

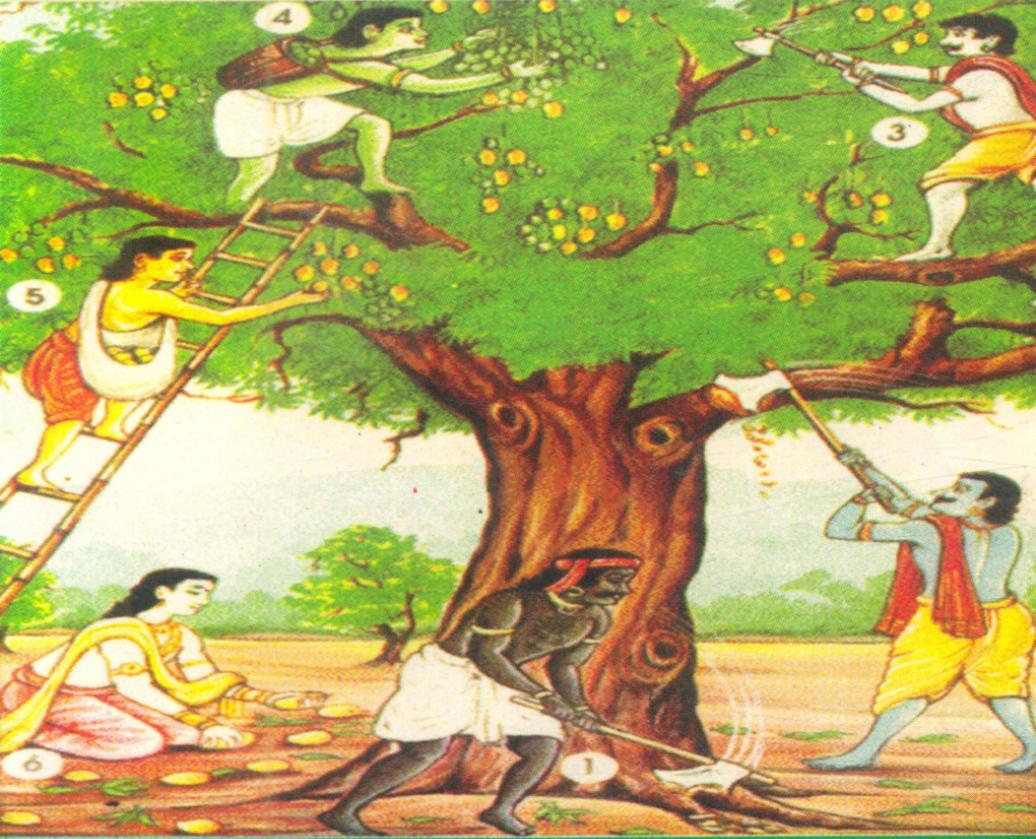
# श्रमण ŚRAMAᅇA

A Quarterly Research Journal of Jainology

Vol. LXI

No. IV

October-December 2010



पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

# श्रमण

## ŚRAMAᅇA

A Quarterly Research Journal of Jainology

---

Vol. LXI

No. IV

October-December 2010

---

*EDITOR*

**Prof. Sudarshan Lal Jain**

*JOINT EDITOR*

**Dr. Shriprakash Pandey**

*Publisher*



**Parshwanath Vidyapeeth, Varanasi**  
(Recognized by Banaras Hindu University  
as an external Research Centre)

---

**श्रमण**

पार्श्वनाथ विद्यापीठ की त्रैमासिक शोध-पत्रिका

ŚRAMAṆA

A Quarterly Research Journal of Pārśvanātha Vidyāpīṭha

Vol. LXI

No. IV

October-December-2010

**ADVISORY BOARD**

**Dr. Shugan C. Jain**, Chairman; **Prof. Cromwell Crawford**, Hawaii; **Prof. Anne Valley**, Canada; **Prof. Peter Flugel**, London; **Prof. Christopher Key Chapple**, USA; **Prof. Ramjee Singh**, Bhagalpur; **Prof. Sagarmal Jain**, Shajapur; **Prof. K.C. Sogani**, Jaipur; **Prof. D.N. Bhargava**, Jaipur, **Prof. Prakash C. Jain**, Delhi

**EDITORIAL BOARD**

**Prof. M.N.P. Tiwari**, Dept. of History of Art, B.H.U.; **Prof. K. K. Jain**, Dept. of Jaina Evam Bauddha Darshan, B.H.U.; **Prof. Viney Jain**, Gurgaon; **Dr. A.P. Singh**, Dept. of History, B.D.C., Sikandarpur.

ISSN: 0972-1002

**Subscription**

*Annual Membership*

For Institutions : Rs. 500.00

For Individuals : Rs. 150.00

*Life Membership*

For Institutions : Rs. 5000.00

For Individuals : Rs. 2000.00

Per Issue Price : Rs. 50.00

Membership fee and articles can be sent in the favour of  
Parshwanath Vidyapeeth, I T I Road, Karaundi, Varanasi-221005

**Published by**

**Shri Indrabhooti Barar**, for Parshwanath Vidyapeeth, I. T. I. Road, Karaundi, Varanasi-221005, Ph. 0542-2575521, 2575890

**Email:** pvvaranasi@gmail.com, pvvaranasi@gmail.com

*Type setting*-V. C.Mishra, Parvatipuri Colony, Kamachcha, Vns.

*Printed by*- Anand Kumar for Mahaveer Press, Bhelupur, Varanasi

**नोट:** पत्रिका में प्रकाशित विचार और तथ्य लेखक के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सम्पादक उनके विचार और तथ्यों से सहमत हों ।

**NOTE:** The facts stated and views expressed in the Journal are those of authors only. The Editor/Editors may not be agreed with the facts stated in the article.

## सम्पादकीय

**नव वर्ष की मंगल कामना**— दिनाङ्क ५ नवम्बर २०१० को दीपावली पर्व पर आपने निश्चय ही भगवान् महावीर का २५३७वाँ निर्वाण दिवस भक्ति-भाव पूर्वक मनाया होगा और अन्तस्तल के गहन अन्धकार को आत्मा की दिव्य ज्योति से दूर किया होगा। भगवान् महावीर निर्वाण से प्रारम्भ होने वाले इस नवीन संवत्सर पर हमारी मंगल कामनाएँ स्वीकार करें। पार्श्वनाथ विद्यापीठ परिवार ने भी इस दिन अपने ७३ वर्ष पूरे करने पर दीपोत्सव सोत्साह सम्मिलित रूप से मनाया। जिज्ञासा-समाधान में इस पर्व पर विशेष लेख भी इस अंक में दे रहे हैं। इसके साथ ही इस त्रैमासिक में समाहित भगवान् पार्श्वनाथ जयन्ती ३१ दिसम्बर २०१० पर हमारी बधाइयाँ स्वीकार करें। ईसवीय वर्ष २०१० का समापन भी इसी दिन हो रहा है और रात्रि १२ बजे के बाद अगला सुप्रभात ईसवीय सन् २०११ का हो रहा है। ईसामसीह का जन्म दिन, 'क्रिसमस' भी २५ दिसम्बर को है। इस हेतु भी श्रमण-परिवार आप सबके प्रति अग्रिम मंगलकामना करता है।

**श्रमण का यह अंक और विद्यापीठ**— मैंने अपने पिछले अंक (जुलाई-सितम्बर २०१०) में कहा था कि अगला अंक ISSJS में समागत विदेशी विद्वानों के शोध-लेखों का होगा परन्तु उसे हम अपरिहार्य कारणों से इस अंक के साथ नहीं दे पा रहे हैं, बाद के किसी अंक में देने का पूरा प्रयास करेंगे। इस अंक में पूर्ववत् हिन्दी-अंग्रेजी के लेखों के साथ '**श्रमण-अतीत के झरोखे में**' का द्वितीय खण्ड प्रकाशित कर रहे हैं। इसमें ई. सन् १९९८ से दिसम्बर २०१० तक के श्रमण में प्रकाशित लेखों की सूची दी गई है जो शोधार्थियों को उपयोगी होगी।

श्रमण के इस अंक के मुखपृष्ठ पर षड्-लेश्या का चित्र दिया गया है जो जैन दर्शन के मनोविज्ञानिक चिन्तन को दर्शाता है। क्रोध आदि कषायों से अनुरंजित मन, वचन और शरीर की गतिविधियों की अवनति व उन्नति के स्तर को बतलाने वाली लेश्याएँ होती हैं। प्रत्येक जीव के शरीर के चारों ओर जो आभामण्डल (Oura) होता है उसके रंग को भी ये बतलाती हैं। ये आत्मा के साथ कर्म-बन्ध में गोंद की तरह कार्य करती हैं। ये छः प्रकार की हैं और अपने रंग के अनुसार व्यक्ति के चरित्र को बतलाती हैं। कृष्ण, नील, कापोत, पीत (तेज), पद्म और शुक्ल इनके माध्यम से व्यक्ति अपनी आध्यात्मिक स्थिति को समझ सकता है। यह चित्र हमें डॉ. शुगनचन्द जैन के सौजन्य से प्राप्त हुआ है। आगे भी हम इसी तरह के चित्र मुखपृष्ठ

पर देते रहेंगे। आगामी अंकों (जनवरी-मार्च २०११) से श्रमण की साइज, लेखों के स्तर आदि को और अच्छा बना रहे हैं।

पार्श्वनाथ विद्यापीठ में जैन साध्वियों तथा अध्ययनरत छात्राओं के लिए एक नया श्री धनपतराज सुशीला भंसाली विद्या-भवन बनकर तैयार हो गया है जिसके पुण्यार्जक हैं श्री धनपतराज भंसाली, वाराणसी। यह विद्याभवन उन्होंने अपने माता-पिता की प्रेरणा से उनकी ही स्मृति में बनवाया है। इसका विधिवत् अनुष्ठानपूर्वक उद्घाटन १६ जनवरी २०११ को होगा। इसी अवसर पर पार्श्वनाथ विद्यापीठ से प्रथम बार प्रकाशित इनसाईक्लोपीडिया, खण्ड प्रथम - 'Art and Architecture' का भी लोकार्पण होगा।

विद्यापीठ में दिनांक ९ नवम्बर से ३० नवम्बर २०१० तक इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, वाराणसी के सौजन्य से 'पाण्डुलिपि संपादन और समीक्षा पर एक कार्यशाला आयोजित हुई जिसका विवरण 'विद्यापीठ के प्राङ्गण' कालम में दिया गया है। इसमें विद्यापीठ के निदेशक का सक्रिय सहयोग रहा।

डॉ. शुगन चन्द जैन के मार्गदर्शन में पार्श्वनाथ विद्यापीठ अब पी.वी.-आई.एस.जे.एस. (PV-ISJS) ग्लोबल सेन्टर के रूप में कार्य कर रहा है जिसके माध्यम से यहाँ विदेशी छात्रों, विद्वानों को जैनधर्म से परिचित किया जा रहा है। कई नयी योजनाएँ भी शुरू हो रही हैं। विशेष के लिए देखें 'विद्यापीठ के प्राङ्गण' शीर्षक में।

'आप पाठकों के द्वारा श्रमण पसन्द किया जा रहा है' यह जानकर प्रसन्नता हुई। हम चाहते हैं कि अपने नये रूप में यह समय से पूर्व आप तक पहुँच जाए।

हम विद्यापीठ में विशेष व्याख्यानों का आयोजन भी करते हैं। शीघ्र ही 'कर्मग्रन्थ' का ५वाँ भाग तथा 'जैन कुमार संभव' प्रकाशित हो जायेगा। 'अन्य प्रकाशनों पर भी कार्य पूर्ण होने को है।

अन्त में मैं अपने सभी सहयोगियों का आभारी हूँ जिन्होंने बड़ी लगन और मेहनत से इसके संपादन में सहयोग किया है। डॉ. शारदा सिंह को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने प्रूफ रीडिंग की तथा 'श्रमण अतीत के झरोखे में' का संकलन किया। साथ ही श्री विमल चन्द्र मिश्र जिन्होंने टंकण कार्य किया और श्री आनन्द कुमार जैन जिन्होंने छपाई का कार्य किया उन्हें भी धन्यवाद देता हूँ। हम उन सभी लेखकों के आभारी हैं जिनके लेख यहाँ छपे हैं।

**सम्पादक**

**सुदर्शनलाल जैन**

# श्रमण

अक्टूबर-दिसम्बर २०१०

## विषयसूची

१. आचार्य हेमचन्द्र काव्यशास्त्रीय परम्परा में अभिनवगुप्त के प्रतिकल्प  
प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदी 07-19
२. उत्तराध्ययन सूत्र की सुखबोधा वृत्ति : एक समीक्षा  
डॉ. एच. सी. जैन 20-24
३. तत्त्वार्थसूत्र के कुछ बिन्दुओं पर विचार  
डॉ. वन्दना मेहता 25-31
४. ध्यान : एक अनुशीलन  
डॉ. रूबी जैन 32-38
५. पुण्यकुशलगणि विरचित भरतबाहुबलिमहाकाव्य में जैनधर्म एवं दर्शन  
डॉ. मधुबाला जैन 39-49
६. वैदिक व श्रमण परम्परा में समान धार्मिक क्रियायें  
डॉ. मनीषा सिन्हा 50-54
1. Representation of Nature in Jaina Art and Tradition  
Dr. Shanti Swaroop Sinha 55-64
2. Jaina Ethics and Its Reflections on Society  
Prof. (Smt.) Rekha Chaturvedi 65-74  
जिज्ञासा और समाधान (दीपावली पर्व, नमोकार मंत्र) 75-79  
विद्यापीठ के प्रांगण में 80-84  
जैन जगत् 85  
साहित्य-सत्कार 86-89  
श्रमण अतीत के झरोखे में 90-136

# ADVERTISEMENT

Parashwanath Vidhyapeeth Varanasi (PV) invites scholars of Jain philosophy, religion, non violence to join its ambitious expansion plans.

PV provides an excellent fully equipped campus adjacent to BHU and opportunities to teach and work with foreign scholars and students in India and abroad. PV is an approved external research organization of BHU.

PV is a well known Jain education and research organization since 1937. PV is honoured to have leading scholars of Jainism with it since its inception. It has now planned a major expansion plan to conduct research and its applications in Jain doctrine, ethics, languages, meditation, rituals, history, art and their application to resolve issues of society in 21<sup>st</sup> century.

PV has openings for the following academic staff:

Position	Qualification	Experience
Professor / Principal Research Fellow	Ph.D.	10 + years
Associate Professors/ Senior Research Fellows	Ph.D.	6+ years
Assistant Professors/ Research Fellows	Ph.D.	1+ years
P.G. Research Fellows	Ph.D.	Fresh
Research Assistants	M.A./Ph.D.	1 year for M.A.

**Other Requirements:** The candidates should have demonstrable experience of conducting research and publishing and/or teaching in reputed universities or research institutes. Fluency in English and computer working is desirable along with command of Hindi /Prakrit or Sanskrit. Candidates who have superannuated /retired may also apply for suitable openings. Candidates for Research Associates without a Ph.D. will have the option to work for a Ph.D. also while serving PV.

**Salary:** Competitive salary along with living accommodation at the campus shall be provided.

**General:** All positions are for posting at the campus of PV in Varanasi. Initially all the positions shall be on contract basis for three years and likely to be made permanent on successful completion of the contract period. Openings, especially for foreign scholars also exist for shorter periods of 6 months to one year to work on specific projects earmarked by PV.

Please send your applications by 30<sup>th</sup> March 2011.

**The President PV**

**D-28, Panchsheel Enclave, New Delhi- 110017**

**or email to isjs\_pv@yahoo.com**

## आचार्य हेमचन्द्र काव्यशास्त्रीय परम्परा में अभिनवगुप्त के प्रतिकल्प

प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदी\*

[ विद्वान् लेखक द्वारा १९ फरवरी २००८ को विश्वविद्यालय पाटन में प्रो. नन्दी द्वारा सम्पादित "काव्यानुशासन" के प्रकाशन के अवसर पर उत्तर गुजरात में हेमचन्द्राचार्य-विषय पर दिए गये व्याख्यान का यह लेखबद्ध रूप है। लेखक ने संस्कृत काव्य साहित्य विज्ञ अभिनवगुप्त से तुलना करके आचार्य हेमचन्द्र के व्यक्तित्व को उत्कृष्ट बताया है। प्रसङ्गवश अन्य काव्य-शास्त्रियों की समीक्षा करते हुए तथा अपने मत को प्रस्तुत करते हुए हेमचन्द्राचार्य के स्वतन्त्र-चिन्तन को सराहा है। ]

संस्कृत काव्यशास्त्र में जो स्थान आचार्य अभिनवगुप्त का है लगभग वही अथवा उससे बड़ा स्थान आचार्य हेमचन्द्र का ठहरता है। आचार्य अभिनवगुप्त आजीवन तपोरत रहे। वे कश्मीर के शैव पीठ के महामहेश्वराचार्य भी थे। हेमचन्द्र को अभिनव गुप्त के बाद के आचार्यों को अनुपलब्ध ग्रन्थ भी उपलब्ध थे। किन्तु उनका साहित्यिक योगदान साहित्यशास्त्र के क्षेत्र में केवल बोलकर लिखाई गयी दो टीकाओं तक सीमित है, जबकि आचार्य हेमचन्द्र का लेखकीय योगदान चतुरस्र और साहित्यशास्त्र के क्षेत्र में भी स्पृहणीय ही नहीं, अद्वितीय है। उन्होंने काव्यानुशासन नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ तो दिया ही, उस पर स्वयं विवेक नामक विस्तृत विवरण भी दिया, जिसकी सामग्री ऐतिहासिक भी है और उपादेय भी। उन्होंने ग्रन्थ-लेखन में भी प्राचीन पद्धति को पुनर्जागरण दिया और साहित्यशास्त्र को महर्षि पाणिनि की अष्टाध्यायी पद्धति प्रदान की। यह पद्धति सुगम भी थी और प्रचलित भी। काव्यानुशासन में उन्होंने अनुच्छेदों को अध्याय नाम दिए। साहित्यशास्त्र के सभी विषयों का नवीन समायोजन भी किया और उसमें काव्यप्रकाश जैसी ढील नहीं आने दी। काव्यप्रकाश का तृतीय उल्लास उसी प्रकार द्वितीय उल्लास में जोड़ा जा सकता था जिस प्रकार नवम उल्लास दशम में और पूरा काव्यप्रकाश केवल आठ उल्लासों में रखा जा सकता था। चाहते तो मम्मट भी अपने काव्यप्रकाश

\* प्रोफेसर इमेरीट्स संस्कृत साहित्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

८ : श्रमण, वर्ष ६१, अंक ४ / अक्टूबर-दिसम्बर-१०

के अनुच्छेदों को उल्लास के स्थान पर अध्याय नाम दे सकते थे जबकि वे वैयाकरणवंश में पैदा हुए थे। यद्यपि वे उत्पन्न हुए थे कश्मीर की उर्वर कल्पना की भूमि में तथापि यह प्रसिद्ध ही है कि उनकी काव्यनिर्माणशक्ति लगभग दुर्बल थी, जबकि आचार्य हेमचन्द्र का संस्कृत भाषा का काव्यलेखन भी अद्वितीय था, जैसा कि उनकी अमर कृति 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितम्' से स्पष्ट है, जिसमें लेखन का 'पाक'- नामक गुण भी अत्यन्त प्रौढ़ि के साथ उपलब्ध है। काव्यनिर्माणशक्ति आचार्य अभिनवगुप्त में भी इतनी अच्छी थी कि वे काव्यकला में सुमेरुशृङ्ग का स्थान पाने योग्य अपने युग का पूर्ण और सही प्रतिनिधित्व करते थे, तथापि वे कोई स्वतन्त्र काव्यकृति नहीं दे पाए। इस अवसर पर मैं जैन सन्तों का स्मरण अतीव आदर के साथ करना चाहूंगा जिन्होंने प्राचीन ग्रन्थों की प्रतिलिपि को धर्मानुष्ठान का स्वरूप दिया और उस समय भी अपने विशाल वाङ्मय को बचाए रखा, उस समय मुद्रण कला का विकास नहीं था। कालिदास-साहित्य के क्षेत्र में मेरा अनुभव यह है कि कालिदास-साहित्य पर लिखी गई जैन टीका-विषयक जैन-परम्परा भी अनेक स्थानों पर महत्त्वपूर्ण है।

साहित्यशास्त्र ही नहीं आचार्य हेमचन्द्र का साहित्यिक अवदान अन्य और छोटे शास्त्रों तथा अस्पृष्ट विषयों तक व्यापक है। मैं तो केवल दो ही क्षेत्रों में सिमटा रहा— एक संस्कृत काव्यशास्त्र और दूसरा कालिदास साहित्य। इन दोनों में मेरी जो उपलब्धियाँ हैं उनसे मैं स्वयं को कृतकृत्य मानता हूँ। कालिदास साहित्य से मैंने अकालिदासीय साहित्य छाँट दिया है और कालिदास का मूलपाठ भी लगभग असंगतियों से मुक्त और सुसिद्धान्तित कर लिया है। काव्यशास्त्र में मुझ पर ही माता सरस्वती की कृपा हुई कि मुझे ही सर्वसमन्वयी महावाक्य 'अलं ब्रह्म' प्राप्त हुआ। चमत्कार या आनन्द ही जब काव्य का उपेय है तब काव्य का भी वही गन्तव्य ठहरता है जो दर्शन का है, क्योंकि आनन्द एकमात्र ब्रह्म ही होता है। यह ऐसी उपलब्धि है जिसमें हम विचार के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी एकरूपता और अस्मिता बचाए मिलते हैं। इस विशेषता के साथ कि दर्शन तो हमें केवल आनन्द का मार्ग दिखलाता है, जबकि साहित्य हमें सीधे आनन्द के सुधासागर में निमग्न कर देता है। रही बात क्षणिकता की तो उसका कोई परिताप नहीं 'वरमद्यकपोतः श्वोमयूरात्' न्याय से। मुझे 'संस्कृत काव्यशास्त्र का आलोचनात्मक इतिहास' भी लिखना पड़ा है और मैं समझता हूँ कि मेरी चतुर्धाम एवं कल्पपञ्चक स्थापना भी वैज्ञानिक

है। यही एकमात्र मार्ग था जिससे आलोचना को समग्रता मिल सकी है। इसी से रस को काव्य में स्थान मिल सका। अन्यथा वह फेंक दिया गया था रसिक में, जो काव्य का अनुभविता है, काव्य नहीं। उद्भट तक के आचार्य इस तथ्य से अवगत थे। वे वस्तुवादी और तथ्यपूर्ण आलोचना के पक्षपाती थे। ध्वनिवादियों के समान वे कल्पनालोक के विपर्यस्त विचारक नहीं थे। हम अध्येता भी भावना में अधिक बहे और इसी विपर्यास की स्थिति में इस देश की प्रज्ञा ने काव्यशास्त्र के इतिहास की मध्यवर्ती एक सहस्राब्दी (ई. सन् ८०० से २०००) बिता दी। आचार्य हेमचन्द्र भी यद्यपि इसी अवधि की देन हैं तथापि वे अधिक भावुक न होकर कुछ सावधान मिलते हैं। अपने इतिहास में हमने आचार्य हेमचन्द्र को उचित गौरव दिया है। उन्हें ध्वनिवादी आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त और मम्मट इन तीनों आचार्यों का ज्ञान है किन्तु वे इनके समान अतिवादी नहीं हैं। वे स्वयं भी विचार करते और अपने तर्कों के साथ स्वतन्त्र निर्णय लेते हैं। यह तथ्य उनके निम्नलिखित निर्णयों से प्रमाणित है—

१. काव्यप्रयोजन के रूप में मम्मट ने जो छः लाभ गिनाए थे उनमें से आचार्य हेमचन्द्र ने केवल तीन लाभों को अपनाया—आनन्द, यश और कान्तासम्मित उपदेश को। धन, व्यवहार-कौशल तथा अनर्थनिवारण को वैकल्पिक स्थान भी नहीं दिया। उनका कथन है—

**धनमनैकान्तिकम्, व्यवहारकौशलं शास्त्रेभ्योऽपिअनर्थनिवारणम् ।**

**प्रकारान्तरेणापीति न काव्यप्रयोजनतया अस्माभिरुक्तम् ॥**

यद्यपि कार्य या कारण में वैलक्षण्य का निवेश कर आचार्य हेमचन्द्र त्यक्त प्रयोजनों को भी नव्यन्याय के धरातल पर मान्य कर सकते थे। आगे बढ़कर काव्य के साथ प्रयोजन की अनिवार्यता को अमान्य भी किया जा सकता था। उसके लिए आदिकवि का दृष्टान्त था ही। यह धृष्टता हमने काव्यालङ्कारकारिका में की भी है।

काव्य या साहित्य के प्रयोजन के विषय में आचार्य हेमचन्द्र ने साहित्य मनीषियों के लिए एक अदभुत सुभाषित उद्धृत किया है। यह सुभाषित एक प्रकार की गायत्री विद्या है, जिसे हमें सतत जपना है—

**उपशमफलाद् विद्याबीजात् फलं धनमिच्छतो  
भवति विफलो यद्यायासस्तदत्र किमदभुतम् ।**

न नियतफला भावाः कर्तुं फलान्तरमीशते  
जनयति खलु ब्रीहेर्बीजं न जातु यवाङ्कुरम् ॥<sup>२</sup>

निश्चित ही भारतीय दृष्टि से साहित्यसाधना एक अध्यात्म साधना है और उसका एकमात्र उद्देश्य आन्तरिक शान्ति है। डॉ. नन्दी ने इसे शान्तिशतक से उद्धृत बतलाया है।<sup>३</sup> शतपत्रम् में हमने भी कुछ ऐसा ही उद्गार व्यक्त किया है—

कविता यदि कीर्त्तये धनाय व्यवहाराय शरीरशोधनाय ।

व्यवसायमिमं विभावयामो व्यवसायः कविता कदापि नासीत्<sup>४</sup> ॥

संस्कृत महाकाव्य सीताचरितम्, जो अब उत्तरसीताचरितम् नाम से प्रसिद्ध है, उसके मुखबन्ध में भी हमारी विनती थी—

न यशसे न धनाय शिवेतरक्षतिकृतेऽपि च नैव कृतिर्मम ।

इयमिमां भरतावनिसंस्कृतिं सुरगवीं च निषेवितुमुदगता<sup>५</sup> ॥

मम्मट के समय तक काव्य और नाट्य की धारणाएँ अनेकता तक ढल चुकी थीं। मम्मट केवल काव्य तक सीमित रहे, जबकि आचार्य हेमचन्द्र ने नाट्य-परिभाषाओं को भी स्थान दिया और काव्यानुशासन की विवेक नामक विस्तृत विवरणिका में उनका विशद विवेचन भोजराज की भाँति किया। हेत्वलङ्कार पर विवेक में आचार्य हेमचन्द्र ने रुद्रट से लेकर मम्मट तक हुए पक्ष-प्रतिपक्ष का विस्तृत विवेचन किया और उसे अन्ततः अमान्य घोषित कर दिया। जिस रूपक को मम्मट ने केवल सादृश्यमूलक आरोप तक सीमित रखा था उसे आचार्य हेमचन्द्र ने भी उसी रूप में प्रस्तुत किया, यद्यपि परवर्ती शोभाकरमित्र उसे आरोप सामान्य तक व्यापक मानते पाए जाते हैं।

२. आचार्य हेमचन्द्र रससूत्र में स्थायी भाव को भी स्थान देते हैं। उनके अनुसार रससूत्र का स्वरूप ऐसा है— विभावानुभावव्यभिचारिभिरभिव्यक्तः स्थायी भावो रसः। यह भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के सप्तम अध्याय में आए निम्नलिखित वचन का ही रूपान्तर था— 'विभावानुभावव्यभिचारिभिरभिव्यक्तः स्थायी रसनाम लभते<sup>६</sup> किन्तु हेमचन्द्राचार्य के उक्त सूत्र में स्पष्ट रूप से मम्मट के काव्यप्रकाश की निम्नलिखित कारिकाओं की अनुश्रुति है—

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च ।

रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः ।

**विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः ।**

**व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायीभावो रसः स्मृतः ॥<sup>७</sup>**

किन्तु यह भी सत्य है कि रससूत्र में स्थायी का उल्लेख नाट्यशास्त्र और ध्वनिवादियों के प्रमुख पक्षधरों में नहीं ही है। अभिनवगुप्त अनुल्लेख का ही समर्थन करते और कहते हैं कि यदि उल्लेख होता तो वही रसानुभूति में शल्य बन जाता। अनुल्लेख के समर्थक आचार्य उसे विभावतावच्छेदक के रूप में स्वतः संगृहीत मान लेते हैं। इनके अनुसार केवल दुष्यन्त नहीं, अपितु शकुन्तलाविषयकरतिमान् दुष्यन्त होगा सामाजिकों के लिए विभाव। सामाजिकों को यह विदित रहता है कि दुष्यन्त शकुन्तला के प्रति अनुरक्त है और शकुन्तला दुष्यन्त के प्रति। इस प्रकार रति नामक स्थायी भाव विभाव के साथ आया माना जा सकता है। हेमचन्द्राचार्य ने इस विवाद पर कोई टिप्पणी नहीं की। वस्तुतः रससूत्र का जो रूप नाट्यशास्त्र में उद्धृत है वह उसका तृतीय आकार है। 'चिदेव रसः' प्रथम आकार बनता है और 'भावविशिष्टा चिद् रसः' द्वितीय। हेमचन्द्राचार्य द्वारा उद्धृत स्थायियुक्त सूत्र रससूत्र की चौथी परम्परा में आता है। पाँचवीं परम्परा में उसमें सात्त्विक भाव भी जोड़ दिए जाते हैं। ध्वनिवाद में सात्त्विक भाव अनुभावों के साथ गिन लिए गये माने जाते हैं। यह पूरा विवरण हमने अपने नाट्यशास्त्र में विस्तार के साथ दे दिया है।<sup>८</sup>

### ३. वैज्ञानिक प्रक्रिया

हेमचन्द्राचार्य ने सात्त्विकभावों की निष्पत्ति में वैज्ञानिक प्रक्रिया काव्यानुशासन की अलंकारचूडामणि नामक स्वोपज्ञ वृत्ति में इस प्रकार दी है—

सीदन्त्यस्मिन्निति सत्त्वं प्राणात्मकं वस्तु, सत्त्वगुणस्यात्रोत्कर्षः, साधुत्वञ्च । अयं च पृथिवीभागप्रधाने प्राणे संक्रान्तचित्तवृत्तिगणः स्तम्भः विष्टब्धचेतनत्वम् । जलप्रधाने तु प्राणे वाष्पः । तेजसस्तु प्राणनैकत्वाद् उभयथा तीव्रातीव्रत्वेन प्राणानुग्रहे स्वेदो वैवर्ण्यञ्च । आकाशानुग्रहे गतचेतनत्वं प्रलयः । वायुस्वातन्त्र्ये तु तस्य मन्दमध्योत्कृष्टावेशात् त्रेधा रोमाञ्च-वेपथु-स्वरभेदभावेन स्थितिरिति भरतविदः । बाह्यास्तु स्तम्भादयः शरीरधर्माः अनुभावाः ते चान्तरालिकान् सात्त्विकान् भावान् गमयन्तः परमार्थतो रतिनिर्वेदादिगमका इति स्थितम् ॥<sup>९</sup>

यहाँ 'भरतविदः' शब्द ध्यान देने योग्य है। अवश्य ही हेमचन्द्राचार्य को प्राप्त इस प्रक्रिया का भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से सम्बन्धित कोई आगम रहा होगा। उससे सम्बन्धित जो अभिनवभारती रही होगी या तो वह प्राप्त नहीं है

अथवा वह स्वयं अभिनवगुप्त को सुलभ नहीं थी। ऐसे अन्य आगम भी हैं जो अभिनवगुप्त में नहीं मिलते, किन्तु जिन्हें भावप्रकाशन उद्धृत करता है। इस प्रकरण में सत्त्व परिभाषा की व्युत्पत्ति भी ध्यान देने योग्य है। स्वयं भरतमुनि 'सत्त्व' शब्द को अनेक अर्थों में प्रस्तुत करते हैं जिनमें से एक अर्थ देह भी है— देहात्मकं भवेत् सत्त्वम्<sup>१०</sup>। 'प्राण' शब्द की उपर्युक्त व्युत्पत्ति देह पर ही लागू होती है। हेमचन्द्राचार्य ने विवेक में इन सबके उदाहरण भी दिए हैं।

इस वैज्ञानिकता का सम्बन्ध लोक से है तथापि कवि द्वारा काव्य में भी उसे प्रदर्शित करने पर द्रष्टा सहृदय का चित्त प्रभावित होता और रसास्वाद तक पहुँचता है, इसलिए इन्हें अलौकिक भाव भी माना जा सकता है। हेमचन्द्राचार्य इनके निरूपण में मम्मट, अभिनवगुप्त और स्वयं आनन्दवर्धन से ही नहीं, इनके पूर्ववर्ती आचार्यों से भी आगे हैं।

४. हेमचन्द्राचार्य ने स्थायी भावों के स्थायित्व की पँहचान यह कहकर की कि इन भावों के विषय में कारण-जिज्ञासा नहीं होती। इन्हें स्वाभाविक माना जाता है। इस तथ्य पर हेमचन्द्राचार्य ने अभिनवगुप्त की पंक्तियाँ अपना ली हैं और लिखा है—

जात एव हि जन्तुरियतीभिः संविद्भिः परीतो भवति०००।

ये पुनरमी धृत्यादयश्चित्तवृत्तिविशेषास्ते समुचितविभावाभावाज्जन्मध्ये न भवन्त्येवेति व्यभिचारिणः। तस्यापि वा भवन्ति विभावबलात् तस्यापि हेतुप्रक्षये क्षीयमाणाः संस्कारशेषतां नावश्यमनुभवन्ति।

रत्यादयस्तु संपादितस्वकर्तव्यतया प्रलीनकल्पा अपि संस्कारशेषतां नातिवर्तन्ते, वस्त्वन्तरविषयस्य रत्यादेरखण्डनात्। यदाह पतञ्जलिः न हि चैत्र एकस्यां स्त्रियां रक्त इत्यन्यासु विरक्तः इति।<sup>११</sup>

५. सञ्चारी भावों के लिए हेमचन्द्राचार्य ने व्यभिचारी भाव शब्द का ही प्रयोग किया और इस निश्चय का समर्थन इन शब्दों में किया—

अमी स्थायिनं विचित्रयन्तः प्रतिभासन्त इति व्यभिचारिण उच्यन्ते।

तथाहि ग्लानोयमित्युक्ते कुत इति हेतुप्रश्नेनास्थायितास्य सूच्यते।

न तु राम उत्साहशक्तिमानित्यत्र हेतुप्रश्नमाहुः।

भोजराज का यह उद्घोष कि चित्तवृत्तिरूप होने से सभी भाव अस्थायी होते हैं इसीलिए रत्यादि भावों को भी स्थायी नहीं कहा जा सकता। ऐसा हेमचन्द्राचार्य के समक्ष रहा होगा, किन्तु उसे उन्होंने मान्यता नहीं दी और

उक्त तर्कों के द्वारा उन्होंने स्थायी भावों की स्थायिता का समर्थन किया। कदाचित् हेमचन्द्राचार्य को भोजराज को प्राप्त अग्निपुराण का अहमागम या अहंकारागम रुचिकर नहीं लगा और रस के लिए प्रयुक्त शृङ्गार शब्द भी। इसीलिए शारदातनय ने भी अपने ग्रन्थ को 'भावप्रकाश' कहना अधिक उपयुक्त माना, शृङ्गारप्रकाश नहीं। भोजराज ने सरस्वतीकण्ठाभरणालङ्कार में भी अग्निपुराण के इस आगम को मान्य माना था। हेमचन्द्राचार्य यहाँ इस आगम की चर्चा कर सकते थे, किन्तु आश्चर्य की बात है कि इस आगम की चर्चा साहित्यशास्त्र के किसी भी आचार्य ने नहीं की। यहाँ तक कि स्वयं भोज भी इस आगम का उल्लेख नहीं करते, जबकि यह आगम इन्हीं के वंश के पुराण अग्निपुराण में मिलता है और इसी को वे शृङ्गारैकरसवाद सरस्वतीकण्ठाभरणालङ्कार में भी अपनाते हैं। आनन्दवर्धन ने पर्यायोक्त, आक्षेप आदि जिन अलंकारों में ध्वनि के अन्तर्भाव का खण्डन किया है, उनमें ध्वनि के अन्तर्भाव का पक्ष केवल अग्निपुराण में मिलता है। महामहोपाध्याय काणे, पद्मविभूषण डॉ. डे और पद्मभूषण डॉ. वेंकटराम राघवन् आदि आज के विद्वानों के ही समान कदाचित् प्राचीन विद्वानों में भी अग्निपुराण के आगम होने में सन्देह था। वस्तुस्थिति यह है कि अग्निपुराण आगमों का संग्रह है। इसमें परवर्ती आगम भी बाद में जोड़ दिए जाएँ तो पूर्ववर्ती आगम अमान्य नहीं हो सकते, किन्तु हम अवश्य ही आत्मविस्मरण के विषम विष से प्रभावित हैं और हमारे अग्रणी आचार्य भी इस विष से प्रभावित लगते हैं। इसीलिए बोधवारिधि जैसे यथार्थ विरुद्ध से अलंकृत महापुरुष अभिनवगुप्त साहित्यागम के ही समान, क्यों नहीं प्रस्तुत करते अपना स्वयं का आगम शिवागम, रसनिष्पत्तिप्रक्रिया के सन्दर्भ में। स्वयं शिवागम की रसनिष्पत्तिप्रक्रिया पहले पहल प्राप्त होती है शारदातनय के भावप्रकाशन में। यद्यपि अभिनवभारती के मङ्गल पद्य में पीठिका की यही प्रक्रिया है, तथापि वह उद्गार मात्र है, निरूपण नहीं। हमने यह प्रक्रिया अपने 'अलं ब्रह्म' ग्रन्थ में दे दी है। हेमचन्द्राचार्य भी इस कमी से मुक्त नहीं कहे जा सकते, यद्यपि वे भी वस्तुतः कलिकाल सर्वज्ञ हैं। वे अपने जैन आगम की रसनिष्पत्ति प्रक्रिया दे सकते थे। किन्तु उनकी पदावली इस सन्दर्भ में लगभग वही है जो ध्वनिवाद में मिलती है। यद्यपि सत्त्वपरिभाषा में वे भरतमुनि से अधिक प्रभावित हैं। पण्डितराज जगन्नाथ के समान वे स्वयं कहते हैं कि भरत केवल मान्य आचार्य हैं। उनका यह वचन भरतमुनि के प्रति उनके असाधारण आदर का प्रमाण है—

यद्यपि शाक्याचार्या राहुलादयस्तु

मौगध्यमदभाविकत्वपरितपनादीनप्यलङ्कारानाचक्षते

तेऽस्माभिर्भरतमतानुसारिभिरुपेक्षिताः<sup>१२</sup>।

६. अलङ्कारों के विषय में हेमचन्द्राचार्य का स्वतन्त्र अध्ययन अभी तक अपेक्षित है। वे ध्वनिवाद के प्रभाव में अलङ्कार को काव्य की महासंज्ञा तो नहीं मान सके, किन्तु उनके विषय में उन्होंने अपने अध्ययन में कमी नहीं रखी। जो विषय जहाँ से मिला उसे उन्होंने वहाँ से अपनाया और मान्य तर्कों के आधार पर अपना निर्णय दिया। कुछ अलंकारों का आगे उल्लेख किया जाएगा।

### आश्चर्य की बात

आश्चर्य की बात यह है कि हेमचन्द्राचार्य व्यञ्जना को अर्थवृत्ति कहते हुए भी महिमभट्ट के समान अनुमान घोषित नहीं कर सके, जबकि हेत्वाभासाश्रित अनुमान को सभी अनुमान ही कहते आए हैं। पितामह को पौत्र का पिता माना जा सकता है, परन्तु कहा नहीं जा सकता। बल्दियत में तो पिता ही लिखा जाएगा 'पिता'। काव्यशास्त्र भी शास्त्र है। इसकी व्यवस्था लोकविरुद्ध होने पर कोरी भावुकता ठहरेगी। वह टुकराई जाएगी। व्यञ्जनावानुवाद को जयन्तभट्ट ने ठोकर लगाई ही। श्रीश्रीहर्ष के 'नैषधीयचरित' का निम्नलिखित उद्गार भी वैसी ही ठोकर है—

दिशि दिशि गिरिग्रावाणः स्वां वमन्तु सरस्वतीं

तुलयतु मिथस्तामापातः स्फुरद्ध्वनिडम्बराम् ।

स पुनरपरः क्षीरोदन्वान् यदीयमुदीयते

मथितुममृतं खेदच्छेदि प्रमोदनमोदनः ॥<sup>१३</sup>

ये दोनों मेधावी विद्वान् महान् दार्शनिक ग्रन्थकार ही नहीं, उत्तमोत्तम कवि भी हैं। स्वयं अभिनवगुप्त से ही साहित्यशास्त्र पढ़े क्षेमेन्द्र ने भी व्यञ्जना को शब्दवृत्ति नहीं कहा। रुद्रट, उद्भट, वामन, भामह, दण्डी, कुन्तक, महिमभट्ट आदि इसी पक्ष के आचार्य हैं। किन्तु मम्मट, जयदेव, विश्वनाथ कविराज और एकावलीकार ध्वनिवाद में ही घिरे रहे और मम्मट द्वारा प्रस्तुत धूलीप्रक्षेप को ही प्रस्तुत कर संतोष करते रहे। इन आचार्यों ने अनुमान के विरोध में व्यञ्जकगत साध्य के साथ अनिश्चितता और सन्दिग्धता को उछाला था। वस्तुतः हेतुगत दोष अनुमान का बाधक न होकर अनुमानगत प्रामाण्य का बाधक

होता है। जहाँ तक प्रामाण्य का सम्बन्ध है स्वयं ध्वनिवादी आनन्दवर्धन काव्य में उसे विरोधी घोषित कर चुके हैं। हेमचन्द्राचार्य इस कमी को दूर कर सकते थे। प्रसन्नता की बात इतनी ही है कि उन्होंने ध्वनिवाद को दृढ़ता के साथ प्रस्तुत नहीं किया। इन और ऐसी अन्य विशेषताओं के कारण हेमचन्द्राचार्य उदार काव्यशास्त्री ठहरते हैं।

व्याकरण और छन्दोनुशासन को भी हेमचन्द्राचार्य ने पुनः प्रस्तुति दी है जिसमें प्रक्रिया नई है, किन्तु निष्पत्ति वही है जो आवश्यक थी। शताब्दियों पूर्व जैन मनीषियों ने हेमचन्द्राचार्य के अनुसार धातुपाठ पर ग्रन्थ भी लिखे।

छन्दोनुशासन में हेमचन्द्राचार्य ने नाट्यशास्त्र से आगे बढ़कर प्रत्ययों की संख्या तीन से आगे पाँच मानी और सभी के लक्षण भी दिए तथा उदाहरण भी। जबकि भरत के नाट्यशास्त्र में प्रस्तार, उद्दिष्ट और नष्ट तीन ही प्रत्यय स्पष्ट थे।

अलंकारों के विषय में हेमचन्द्राचार्य का संग्रह तथा मनन स्तुत्य है। वे पूर्वाचार्यों के मत प्रस्तुत कर उनका विश्लेषण करते और अपना अभिमत प्रस्तुत करते हैं। यथा—

### स्वभावोक्ति

स्वभावोक्ति पर मम्मट के पूर्ववर्ती कुन्तक ने उसे अमान्य करते हुए जो तीक्ष्ण प्रहार किया था उसका वैसा ही उत्तर एकमात्र महिमभट्ट ने दिया था। हेमचन्द्राचार्य ने उसे अपनाया और वे संप्रदायवाद से तटस्थ रहे।

अन्य अलंकारों के विषय में भी हेमचन्द्राचार्य ने पुनर्विचार किया और अनेक नवीन निष्कर्ष प्रदान किए। कुन्तक द्वारा अस्वीकृत समासोक्ति, सहोक्ति आदि पर हेमचन्द्राचार्य ने विचार किया और प्राचीन आचार्यों के मान्य तर्क प्रस्तुत किए। व्याजरूपा व्याजोक्ति में हेमचन्द्राचार्य ने अशिष्टता से बचने का आगाह किया। एक उदाहरण दिया—

आसीन्नाथ पितामही तव मही माता ततोऽनन्तरं,

जाया संप्रति भाविनी पुनरहो सैवानवद्या वधुः ॥<sup>१४</sup>

अर्थात् हे राजन! भूमि पहले आपकी पितामही रही, फिर माता, उसके बाद प्रिय-जाया और आगे चलकर यही आपकी पुत्रवधु बनेगी।

सोचिए कि हेमचन्द्राचार्य कितनी सटीक बात कह रहे हैं। उन्होंने इसे अत्यन्त असभ्य उक्ति कहा है। यह कोई मर्यादावादी महापुरुष ही कह सकता है। अन्यथा वामन ने तो लक्ष्मी और विष्णु के प्रथम संभोग तक को पर-

कल्याणकारी उदाहरण बना रखा है—

**कचकुचचिबुकाग्रे पाणिषु व्यापृतेषु प्रथमजलधिपुत्रीसङ्गमेऽनङ्गधाम्नि ।  
निबिडनिबिडनीवीग्रन्थिविश्लेषणोच्छोश्चतुरधिककराशा शार्ङ्गिणो वः  
पुनातु ॥<sup>१५</sup>**

इसी प्रकार ससन्देहालङ्कार का विशद निरूपण कर उसके कतिपय स्थलों को हेमचन्द्राचार्य रसाभास या भावाभास कहते हैं। हेमचन्द्राचार्य ने सूक्ष्म तथा अर्थापत्ति का अन्तर्भाव अनुमान में दिखलाया है।<sup>१६</sup> सारालङ्कार को परिसंख्या में गतार्थ बतलाते हुए हेमचन्द्राचार्य ने टिप्पणी दी—

**राज्ये सारं वसुधेत्यादौ सारालङ्कारः कैश्चिदुक्तः, स चान्यापोहमन्तरेण न चमत्करोतीति परिसंख्यैवालङ्कारः<sup>१७</sup>।**

हेमचन्द्राचार्य ने हेत्वलङ्कार पर विस्तृत और गम्भीर विवेचन करने के बाद लिखा कि काव्यप्रकाश का इस अलङ्कार को अमान्य ठहराना ठीक है यदि इसके स्थलों में चमत्कार न हो। इसका अर्थ यह कहना है कि हेत्वलङ्कार स्थल में चमत्कार का अनुभव हो रहा हो तो उसे अलङ्कार स्वीकार किया जा सकता है। तब मम्मट द्वारा उसे काव्यलिङ्ग अलङ्कार में अन्तर्भूत मानना उचित न होगा।<sup>१८</sup> यह कदम कोई स्वस्थ विचारक ही ले सकता है। विनोक्ति में हेमचन्द्राचार्य ने कोई चमत्कार नहीं देखा और सहोक्ति को उपमा में अन्तर्भूत माना।<sup>१९</sup> पण्डितराज जगन्नाथ ने विनोक्ति में ध्वनित्व भी माना और 'विशालाभ्यामाभ्यां' उदाहरण प्रस्तुत किया। हेमचन्द्राचार्य ने भाविकालङ्कार के सन्दर्भ में मम्मट से आगे बढ़ते हुए अभिनेय वस्तु और या नाट्य के प्रवेशक, विष्कम्भक आदि को भी स्मरण किया है। यह एक अत्यन्त विचारणीय विषय है।<sup>२०</sup> उदात्तालंकार में मम्मट ने भोजराज की दानकीर्ति से संबन्धित जो 'मुक्ताः केलिविसूत्रहारगलिताः' उद्धृत किया है उसमें हेमचन्द्राचार्य ने अतिशयोक्ति को मान्यता दी है।<sup>२१</sup> 'तदिदमरण्यं' इस द्वितीय उदाहरण में भी हेमचन्द्राचार्य ने रामचरित की ध्वनि या उसी के गुणीभूतव्यङ्ग्य को मानने का तर्क प्रस्तुत किया है।<sup>२२</sup> इसी प्रकार 'आसीदञ्जनमत्रेति' पद्य में भावध्वनि का चमत्कार माना है, भाविक का नहीं।<sup>२३</sup> प्रत्यनीकालंकार में चमत्कार का कारण हेमचन्द्राचार्य ने उत्प्रेक्षा को माना है।<sup>२४</sup>

## समाधान

हेमचन्द्राचार्य ने साहित्यशास्त्र में अनेक समाधान भी प्रस्तुत किए हैं। उदाहरणार्थ लता और वृक्ष के व्यवहार से यदि स्त्री-पुरुष के व्यवहार का

आचार्य हेमचन्द्र काव्यशास्त्रीय परम्परा में अभिनवगुप्त के प्रतिकल्पः १७

द्योतन हो रहा हो तो वहाँ रस नहीं, अपितु रसाभास है। एतदर्थ उन्होंने कुमारसम्भव के अष्टम सर्ग का निम्नलिखित पद्य प्रस्तुत किया है—

**अङ्गुलीभिरिव केशसञ्चयं सन्निगृह्य तिमिरं मरीचिभिः ।**

**कुङ्मलीकृतसरोजलोचनं चुम्बतीव रजनीमुखं शशी ॥<sup>२५</sup>**

इसी प्रकार दोष, गुण और अलंकारों पर हेमचन्द्राचार्य ने अनेक नवीन तर्क और समाधान प्रस्तुत किए हैं।

### अपेक्षा

वस्तुतः काव्यशास्त्र का एक-एक विषय हेमचन्द्राचार्य के समय तक पर्याप्त विस्तार पा चुका था, अतः उस पर पूर्ववर्ती विमर्श प्रस्तुत कर परवर्ती विकास भी दिया जाना अपेक्षित है। तभी हमारा साहित्यशास्त्रीय अध्ययन पूर्ण होगा। इस दिशा में कहीं से किसी प्रकार के अभियान की सूचना नहीं है। आचार्य हेमचन्द्र के नाम पर निर्मित पाटन के विश्वविद्यालय में यह अपेक्षा पूरी की जा सकती है। अच्छा होगा यदि इस विश्वविद्यालय में एक-एक शास्त्र की एक-एक स्वतन्त्र फैकल्टी स्थापित हो और उसमें उस शास्त्र से सम्बन्धित प्रत्येक पक्ष का अधिकारी प्राध्यापक अपने विषय को विश्व के समक्ष समग्रता से प्रस्तुति दे सके।

### अलङ्कार एक महासंज्ञा

इतिहास साक्षी है कि अलङ्कारशास्त्र के सभी आचार्य अलंकार संज्ञा को काव्य के सभी धर्मों की एक महासंज्ञा मानते आए हैं। उद्धट ने रस को दण्डी के ही समान एक अलंकार माना और उससे युक्त काव्य को रसवत् नाम दिया, जो व्याकरण और तर्क से संगत और समर्थित था। अतिवादी ध्वनिवाद ने अलंकार को एकमात्र अप्रधान घोषित कर एकमात्र रस को प्रधान ठहराया। तब रसवदलंकार संज्ञा के निर्वाह के लिए रसवत्पद में मतुप् प्रत्यय न मानकर सादृश्यार्थक वतिप्रत्यय मानना चाहा। यह था इतिहास के साथ खिलवाड़। इसका आरम्भ स्वयं आनन्दवर्धन ने ई.सन् ८५० में किया। उन्हीं का वचन है—

**प्रधानेऽन्यत्र वाक्यार्थे यत्राङ्गं तु रसादयः ॥**

**काव्ये तस्मिन्नलङ्कारो रसादिरिति मतिः ॥<sup>२६</sup>**

ध्वनिवाद के समक्ष इस समय प्रश्न उपस्थित है कि रसादि के साथ काव्य का सम्बन्ध है अथवा नहीं। ध्वनिवादी इसका उत्तर दे पाने में असमर्थ

हैं। वे रस का अस्तित्व रसिक में मानते हैं जो काव्य नहीं काव्य का भावक होता है। जिस काव्य में रसिक को रस मिलता है उसमें वह रसाभिव्यञ्जक सामग्री का अस्तित्व स्वीकार करता है, किन्तु उसे काव्य की असाधारणता नहीं कह पाता। भोजराज उसे रसोक्ति वर्ग का असाधारण धर्म और रसोक्ति नामक अलंकार घोषित करने में तनिक नहीं हिचकते। भोजराज अभिनवगुप्त के कनिष्ठ समकालीन आचार्य हैं। ध्वनिवादी जिन आचार्यों ने भाविक और उदात्त जैसे उक्तिधर्मों को अलंकार मान लिया वे रसाभिव्यञ्जिका सामग्री को भी काव्यालङ्कार कह सकते थे। इस प्रकार ध्वनिवाद में रस, काव्य से असंबद्ध ही रहा है।

हेमचन्द्राचार्य ने प्राकृत और अपभ्रंश पर भी ग्रन्थ लिखे और उनके कोष दिए। किन्तु संस्कृत पर भी उनका असाधारण अधिकार था और उन्होंने संस्कृत के व्याकरण में भी परिष्कार किया, जिनको आधार बनाकर शताब्दियों पूर्व जैन साधुओं ने शब्दरूप और धातुरूप पर ग्रन्थ लिखे जिनमें केवल प्रक्रियामात्र भिन्न है, परिणति एक और अभिन्न है। उनका कविकर्म भी त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितम् जैसे विशालकाय महाकाव्य से प्रमाणित है। आनन्दवर्धन ने भी कोई अर्जुनचरितमहाकाव्य लिखा था, किन्तु वह उतना प्रसिद्ध नहीं हुआ जितना हेमचन्द्राचार्य का काव्य। अभिनवगुप्त भी कविकर्म में अपने स्वर्णयुग का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं, तथापि उनकी कोई स्वतन्त्र काव्यकृति प्रकाश में आई नहीं। अभिनवभारती में जो उन्होंने अपने उदाहरण दिए हैं वे उनकी प्रौढ़, कवित्वशक्ति में प्रमाण है। मम्मट को तो कविकर्म ने मानो छोड़ ही रखा है। इस प्रकार हेमचन्द्राचार्य कविकर्म में भी किसी ध्वनिवादी से पीछे नहीं हैं।

महामहिम काणे के अनुसार हेमचन्द्राचार्य का दूसरा नाम चंगदेव था। कुछ विद्वानों की धारणा है कि वे महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त चांगदेव से अभिन्न थे। यह भी कहा जाता है कि हेमचन्द्राचार्य को भगवती पद्मावती सिद्ध थी अथवा उन्हें पद्मावती देवी से विशेष सुविधा प्राप्त थी। उन्हें जिस ग्रन्थ की आवश्यकता होती माता पद्मावती सुलभ करा देती थीं। ये सभी आख्यायिकाएँ हेमचन्द्राचार्य की अद्भुतता की प्रमाण हैं।

### सन्दर्भ

१. काव्यानुशासन, आचार्य हेमचन्द्र १.३ वृत्ति, सं. तपस्वी नन्दी, प्र. हेमचन्द्राचार्य नार्थ गुजरात, यूनिवर्सिटी, पृ. ३ (नन्दीसंस्करण)

आचार्य हेमचन्द्र काव्यशास्त्रीय परम्परा में अभिनवगुप्त के प्रतिकल्पः १९

२. काव्यानुशासनविवेक, १.३, नन्दीसंस्करण, पृ. १६२
३. द्र. काव्यानुशासन, पृष्ठ १७२
४. शतपत्र श्लोक १००
५. सीताचरितम्, मुखबन्ध, पृ. १०
६. काव्यानुशासनविवेक, पृ. १७२, काव्या. १.३ नान्दीसंस्करण
७. काव्यप्रकाश, ४.२७, २८
८. द्र. नाट्यशास्त्र, सम्पादक तथा अनुवादक रेवाप्रसाद द्विवेदी, प्र. IJAS, शिमला, २००५ पृष्ठ ९२)
९. सं.का.शा. का आ. इ. पृ. २४९, काव्यानुशासन २२७-२८ नन्दीसंस्करण।
१०. नाट्यशास्त्र अध्याय २२.६
११. योगसूत्र २४
१२. काव्यानुशासन ७.५२ वृत्ति
१३. नैषध, २२ अन्तिम
१४. डॉ. नन्दीसंस्करण पृ. ३२२
१५. पृ. ३२४ नन्दीसंस्करण
१६. पृ. ३२६ नन्दीसंस्करण
१७. पृ. ३२६ नन्दीसंस्करण
१८. पृ. ३२७ नन्दीसंस्करण
१९. पृ. ३२७ नन्दीसंस्करण
२०. पृ. ३२८ नन्दीसंस्करण
२१. पृ. ३२९ नन्दीसंस्करण
२२. पृ. ३३० नन्दीसंस्करण
२३. पृ. ३३० नन्दीसंस्करण
२४. पृ. ३३० नन्दीसंस्करण
२५. कुमार सम्भव ८.६३
१६. ध्वन्यालोक २.५

\*

## उत्तराध्ययन सूत्र की सुखबोधा वृत्ति : एक समीक्षा

डॉ. एच.सी. जैन\*

[ आचार्य नेमिचन्द्रसूरिकृत सार्थक नाम वाली सुखबोधावृत्ति (संक्षिप्त टीका) का आधार आचार्य शान्तिसूरिकृत शिष्यहिता टीका है। यह टीका सांस्कृतिक दृष्टि से तथा कुछ विशिष्ट कथाओं की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। लेखक ने इस लेख के माध्यम से इस पर शोध करने की जिज्ञासा प्रकट की है। ]

उत्तराध्ययन सूत्र पर आचार्य शान्तिसूरि की शिष्यहिता टीका पर आधारित सुखबोधा टीका स्वतंत्र रूप से लिखी गयी है। इसे आचार्य नेमिचन्द्रसूरि ने ११वीं शताब्दी में लिखा है। उत्तराध्ययन के ३६ अध्ययनों में वर्णित प्राकृत सूत्रों पर यह यद्यपि संस्कृत टीका है किन्तु इसका हिन्दी अनुवाद एवं शोध कार्य अभी तक नहीं हुआ है। मूल ग्रन्थ के अध्ययन के आधार पर समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है। यह ग्रन्थ १२००० श्लोक प्रमाण है।<sup>१</sup> उत्तराध्ययन सुखबोधावृत्ति के प्रारम्भ में तीर्थंकर, सिद्ध, साधु एवं श्रुत-देवता को नमस्कार किया गया है।<sup>२</sup> इस ग्रन्थ के अन्त में गच्छ, गुरुभ्राता, वृत्तिरचना का स्थान, समय आदि का निर्देश भी लेखक के द्वारा किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि लेखक ने अपने गुरु-भ्राता मुनिचन्द्रसूरि की प्रेरणा से प्रस्तुत वृत्ति की रचना की है। इस टीका (वृत्ति) की रचना के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए स्वयं नेमिचन्द्रसूरि (देवेन्द्रगणि) लिखते हैं—

आत्मस्मृतये वक्ष्ये जडमति-संक्षेप-रुचि-हितार्थञ्च ।  
एकैकार्थ-निबन्धां वृत्तिं सूत्रस्य सुखबोधाय ॥  
बह्वर्थाद् वृद्धकृताद् गंभीराद् विवरणात् समुद्धृत्य ।  
अध्ययनामुत्तर पूर्वाणामनेकपाठगताम् ॥  
बोद्धव्यानि यतोऽयं, प्रारम्भो गमनिकामात्रम् ॥

\* सह-आचार्य, जैनेलोजी एवं प्राकृत विभाग, मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान।

अर्थात् मन्दमति और संक्षिप्त रुचि प्रधान पाठकों के लिए मैंने अनेकार्थ एवं गंभीर-विवरण से पाठान्तरों और अर्थान्तरों से दूर रहकर इस टीका की रचना की है। अर्थान्तरों और पाठान्तरों के जाल से मुक्त होने के कारण इस टीका की सुखबोधा टीका संज्ञा सार्थक भी है।<sup>३</sup> इस टीका (वृत्ति) में छोटी-बड़ी सभी मिलाकर १२५ प्राकृत भाषा निबद्ध कथाएँ वर्णित हैं। इन कथाओं में प्रेम, परम्परा-प्रचलित मनोरंजक वृत्तान्त, जीव-जन्तु, जैन साधुओं के आचार का महत्त्व प्रतिपादन करने वाली नीति तथा उपदेशात्मक कथाएँ वर्णित हैं। कथानक-रूढ़ियों का प्रतिपादन करने वाली कथाएँ भी हैं, जैसे— राजकुमारी का वानरी बन जाना, किसी राजकुमारी को हाथी द्वारा भगाकर जंगल में ले जाना। ऐसी ही कथाएँ 'रयणचूडरायचरियं' में भी वर्णित हैं।

उत्तराध्ययन सुखबोधा वृत्ति की प्राकृत-कथाएँ आकर्षण का विषय रही हैं। जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. फीके ने 'साम्यसुत्त' नामक प्राकृत कथा पर अपना शोधपूर्ण निबन्ध लिखा है। यह कथा इसी वृत्ति से ली गयी है। इसी तरह डॉ. हर्मन जैकोबी ने 'महाराष्ट्रीय कथाएँ' नामक अपने निबन्ध में उत्तराध्ययन वृत्ति से कई कथाएँ लेकर उन पर शोधपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की है।<sup>४</sup> उत्तराध्ययन वृत्ति की इन कथाओं में से सात कथाओं का संकलन मुनि जिनविजय जी ने 'प्राकृत कथा संग्रह' के नाम से विक्रम संवत् १९७८ में अहमदाबाद से प्रकाशित किया है।

प्राकृत-कथाओं की प्रचुरता के कारण यह वृत्ति हरिभद्र शैली का अनुसरण करती हुई प्रतीत होती है। वैराग्य-रस से परिप्लावित ब्रह्मदत्त और अगडदत्त जैसी कथाओं के संयोग से इस सुविशाल टीका में जान आ गयी है और विभिन्न ग्रन्थों और गाथाओं के उदाहरणों के कारण तथा नाना विषयों की विवेचना के कारण इसकी सार्वजनिक उपयोगिता सिद्ध हुई है।

आचार्य नेमिचन्द्र सूरि ने उत्तराध्ययन के प्रथमांशों की जितनी विस्तृत टीका की है उतनी उत्तरांशों की टीका में विस्तार नहीं है। अंतिम १२-१३ अध्ययनों की टीका अधिक संक्षिप्त होती गयी है, उसमें न कोई विशेष कथाएँ हैं और न कोई अन्य उद्धरण ही हैं।

उत्तराध्ययन सुखबोधा टीका सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। उसमें तत्कालीन समाज और संस्कृति के सम्बन्ध में विविध सामग्री प्राप्त होती है। डॉ. जगदीश चन्द्र जैन<sup>५</sup> एवं देवेन्द्रमुनि<sup>६</sup> ने इस टीका की सांस्कृतिक सामग्री पर कुछ प्रकाश डाला है। उत्तराध्ययन की सुखबोधा टीका से ज्ञात होता

है कि राजा का उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र होता था। उसके राज्य-कार्य आदि से विरक्त होने पर लघु-पुत्र को राज्य दे दिया जाता था। राजकुमार यदि दुर्व्यसनों में फँस जाता था तो उसे देश-निकाला भी दे दिया जाता था।<sup>१०</sup> विवाह के समय शुभ तिथि और मुहूर्त भी देखे जाते थे।<sup>११</sup> छोटी-छोटी बातों के लिए पत्नियों को छोड़ देने की भी प्रथा थी। एक वणिक् ने अपनी पत्नी को इसलिए छोड़ दिया कि वह सारा दिन शरीर की साज-सज्जा किया करती थी और घर का बिल्कुल ध्यान नहीं रखती थी।<sup>१२</sup> सामान्य स्त्रियों के अतिरिक्त वेश्याओं का भी सम्मान था। विशिष्ट वेश्याएँ नगर की शोभा, राजाओं की आदरणीय और राजधानी की रत्न मानी जाती थीं।<sup>१३</sup>

इस सुखबोधा टीका में अनेक रोगों और उनकी परिचर्याओं का भी उल्लेख मिलता है। रोगों के नाम हैं— श्वास, खांसी, ज्वर दाह, उदरशूल, भगंदर, अर्श, अजीर्ण, दृष्टिशूल, मुखशूल, अरुचि, अक्षिवेदना, खाज, कर्ण-शूल, जलोदर और कोढ़।<sup>१४</sup>

चिकित्सा के मुख्य चार पाद माने गये हैं— १. वैद्य, २. रोगी, ३. औषधि और ४. परिचर्या करने वाले।<sup>१५</sup>

इस वृत्ति से शिक्षाओं के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त होती है। विद्यार्थी का जीवन सादगी से भरा होता था। कितने ही विद्यार्थी अध्यापक के घर पर रहकर पढ़ते थे और कितने ही धनवानों के यहाँ पर अपने खाने-पीने का प्रबन्ध कर लेते थे। कौशाम्बी नगरी के ब्राह्मण काश्यप का पुत्र कपिल श्रावस्ती में पढ़ने के लिए गया, और कलाचार्य के सहयोग से अपने भोजन का प्रबन्ध वहाँ के धनी शालीभद्र के यहाँ पर किया।<sup>१६</sup> विद्यार्थी का समाज में बहुत सम्मान था। जब कोई विद्याध्ययन समाप्त कर घर जाता था तब उसका सार्वजनिक सम्मान किया जाता था। नगर को सजाया जाता था। राजा भी उसके स्वागत के लिए सामने जाता था। उसे बड़े आदर के साथ लाकर इतना उपहार समर्पित करते थे कि जीवनभर उसे आर्थिक दृष्टि से परेशानी नहीं उठानी पड़ती थी।<sup>१७</sup> बहतर कलाओं में शिक्षण का प्रचलन था।<sup>१८</sup> समुद्र-यात्रा के भी कई वर्णन इस वृत्ति में उपलब्ध हैं। व्यापारी अपना माल भर कर नौकाओं (जहाजों) से दूर-दूर देशों में जाते थे। कभी-कभी तूफान आदि के कारण नौका टूट जाती थी और सारा माल पानी में बह जाता था। जहाज के वलय-मुख (भँवर) में प्रविष्ट होने का बहुत भय था।<sup>१९</sup>

जब व्यापारी दूर देश में व्यापार करने जाते थे तब उन्हें वहाँ के राजा की अनुमति प्राप्त करनी पड़ती थी। जो माल दूसरे देशों से आता था उसकी जाँच करने के लिए व्यक्तियों का एक विशेष समूह होता था।<sup>१७</sup> कर भी वसूल किया जाता था। कर वसूल करने वालों को 'सूंकपाल (शुल्कपाल) कहा जाता था।<sup>१८</sup> व्यापारियों के माल असबाब पर भी कर लगाया जाता था। व्यापारी लोग शुल्क से बचने के लिए अपना माल छिपाते भी थे।<sup>१९</sup>

इस वृत्ति से ज्ञात होता है कि उस समय समाज में कई अपराध भी होते थे। अपराध में चौर्य-कर्म प्रमुख था। चोरों के अनेक वर्ग इधर-उधर कार्यरत रहते थे। लोगों में चोरों का आतंक हमेशा बना रहता था। चोरों के अनेक प्रकार थे।<sup>२०</sup> कितने ही चोर इतने निष्ठुर होते थे कि वे चुराया हुआ माल छिपाने के लिये अपने कुटुम्बीजनों को भी मार देते थे। एक चोर अपना सम्पूर्ण धन एक कुएँ में रखता था। एक दिन उसकी पत्नी ने उसे ऐसा करते देख लिया। उस चोर ने भेद खुलने के भय से अपनी पत्नी को ही मार दिया। जब उसका पुत्र चिल्लाया तब लोगों ने उसे पकड़ लिया।<sup>२१</sup>

इसी प्रकार अन्य कितने ही तथ्य इस वृत्ति में उपलब्ध हैं जो तत्कालीन सांस्कृतिक जीवन को स्पष्ट करते हैं। इस वृत्ति की कई कथाएँ भी बहुत लोकप्रिय हुई हैं। सगर-पुत्र सनत्कुमार, ब्रह्मदत्त, मूलदेव, मंडित, अगडदत्त आदि की कथाएँ बहुत मनोरंजक हैं।<sup>२२</sup>

इस प्रकार सुखबोधा टीका अत्यन्त सरल, सुबोध एवं मार्मिक है। इसकी भाषा-शैली रोचक है। कथाओं एवं सांस्कृतिक दृष्टि से टीका महत्वपूर्ण है।

### सन्दर्भ

१. श्रीविजयमंगसूरि द्वारा सम्पादित आत्मवल्लभ ग्रन्थावली, वलाद, अहमदाबाद से प्रकाशित सुखबोधावृत्ति।
२. वही, सूत्र प्रथम
३. जैन धर्म के प्रभावक आचार्य, साध्वी संघमित्रा, पृ. ३११
४. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, विस्तार के लिए देखें, विन्टरनिट्स, भाग-२
५. जगदीशचन्द्र जैन, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ. ३५
६. भगवान् महावीर-एक अनुशीलन, देवेन्द्र मुनि शास्त्री, पृ. ५५
७. उत्तराध्ययन सुखबोधा (वृत्ति) टीका, पृ. ८४
८. वही, पृ. १४२
९. वही, पृ. ९७

२४ : श्रमण, वर्ष ६१, अंक ४ / अक्टूबर-दिसम्बर-१०

१०. वही, पृ. ६४

११. (अ) वही, पृ. १६३

(ब) भगवान् महावीर : एक अनुशीलन, मुनि, आचार्य देवेन्द्र, पृ. ५५, पैरा २

१२. (अ) उत्तराध्ययन वृत्ति (सुखबोधा टीका), पृ. २६९

(ब) भगवान् महावीर : एक अनुशीलन, मुनि, आचार्य देवेन्द्र, पृ. ५६, पैरा ३

१३. वही, पृ. १२४

१४. (अ) वही, पृ. ५७

(ब) उत्तराध्ययनवृत्ति, पृ. १२३

१५. वही, पृ. ३१८

१६. वही, पृ. २५२

१७. वही, पृ. ६५

१८. वही, पृ. ७१

१९. वही, पृ. ६४

२०. वही, पृ. १४९

२१. वही, पृ. ८१

२२. प्राकृत कथा संग्रह, मुनि, जिनविजय, वि. सम्वत् २०१८

\*

## तत्त्वार्थसूत्र के कुछ बिन्दुओं पर विचार

डॉ. वन्दना मेहता\*

[ लेखिका का यह आलेख श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराओं के तत्त्वार्थसूत्र-सम्बन्धी कुछ बिन्दुओं पर प्रकाश डालता है तथा तत्त्वार्थसूत्र को आगम-सम्मत सिद्ध करता है। ]

तत्त्वार्थसूत्र जैन धर्म-दर्शन का एक प्रतिनिधि ग्रन्थ माना जाता है। यह जैन परम्परा का एकमात्र सूत्रशैली का ऐसा संग्रह ग्रन्थ है जिसे सभी आग्नाय समान रूप से स्वीकार करते हैं। इसे सभी सम्प्रदायों ने अपनी-अपनी परम्परा से जोड़ने का प्रयास किया है।

मूल रूप से इस लेख में यह देखना है कि तत्त्वार्थसूत्र का मूल स्वरूप किस पर आधारित है? इसकी शैली किससे प्रभावित है तथा उसका अपना क्या वैशिष्ट्य है? ऐसा कहा जाता है कि जिस प्रकार बादरायण ने उपनिषदों का दोहन करके ब्रह्मसूत्रों की रचना द्वारा वेदान्त को व्यवस्थित किया है, उसी प्रकार उमास्वाति (दिगम्बर परम्परा में उमास्वामी) ने आगमों का दोहन करके तत्त्वार्थ की रचना के द्वारा जैन दर्शन को व्यवस्थित करने का प्रयास किया है। उसमें जैन तत्त्वज्ञान, आचार, भूगोल, खगोल, जीव-विद्या, पदार्थ-विज्ञान आदि विविध प्रकार के विषयों के मौलिक मन्तव्यों को मूल आगमों के आधार पर सूत्रबद्ध किया है तथा उन सूत्रों के स्पष्टीकरण के लिए श्वेताम्बर परम्परानुसार स्वीपज्ञ भाष्य की भी रचना की गई है।<sup>१</sup>

### तत्त्वार्थ के मूल स्वरूप का आधार

इस विषय में पर्याप्त मतभेद हैं कि तत्त्वार्थ के मूल आधार श्वेताम्बर आगम हैं या दिगम्बर आगम षट्खण्डागम और कुन्दकुन्द के ग्रन्थ। इस विषय के स्पष्टीकरण में विद्वान्गण विस्तार से अपने-अपने मन्तव्यों को प्रस्तुत कर चुके हैं। अतः इसमें ज्यादा कहने की आवश्यकता नहीं है।

मुनि आत्मारामजी, पं. सुखलालजी, एच.आर. कापडिया, सुजिको ओहियो<sup>२</sup> आदि ने स्वीकार किया है कि तत्त्वार्थ के मूल आधार श्वेताम्बर आगम

\* जे.आर. एफ. फैलो, जैन विश्वभारती, लाडनू।

(३२/४५) हैं। पं. जुगलकिशोर मुख्तार, पं. परमानन्द शास्त्री, पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, नेमिचन्द्र शास्त्री, पं. फूलचन्द्रजी आदि ने स्वीकार किया है कि तत्त्वार्थ के मूल आधार दिगम्बर आगम हैं।<sup>३</sup> उक्त तथ्य के आधार पर हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि आगमों में दार्शनिक विवरण तो था ही किन्तु वे व्यवस्थित रूप में नहीं थे। उन्हें व्यवस्थित करने का सर्वप्रथम प्रयास उमास्वाति द्वारा किया गया।

अब हमारे सामने प्रश्न यह है कि उमास्वाति ने आगमों से संग्रहण किस रूप में किया तथा कैसे किया। इस पर यही कहा जा सकता है कि कहीं तो शब्दशः संग्रह है, अर्थात् आगम सूत्रों के भाव (अर्थ) को ध्यान में रखकर तत्त्वार्थसूत्र की रचना की गई है। कहीं-कहीं पर विस्तृत विषयों का संक्षिप्तीकरण किया गया है। इस विषय में पूर्व में कहीं विस्तृत तो कहीं संक्षिप्त रूप में कहा जा चुका है। फिर भी प्रसंगानुकूल होने के कारण कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रही हूँ—

तत्त्वार्थ का वर्ण्य-विषय दस अध्यायों में विभाजित है—

पहले अध्याय में ज्ञान से सम्बन्धित चर्चा है तथा पदार्थ निरूपण के सन्दर्भ में सात पदार्थों का उल्लेख प्राप्त होता है—  
**“जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्”** (१.४) अर्थात् जीव, अजीव आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व कहे गये हैं। जैसा कि स्थानांगसूत्र में कहा गया है—**“नव सञ्भावपयत्था पण्णत्ता, तं जहा—जीवा अजीवा पुण्णं पावं आसवो संवरो णिज्जरा बंधो मोक्खो”** (१.६) यहाँ पर विशेष बात यही है कि जहाँ स्थानांगसूत्र में पुण्य-पाप की अलग गणना की गई है वहीं तत्त्वार्थ में पुण्य-पाप को बंध के अन्तर्गत लिया गया है।

इसी तरह तत्त्वार्थ के प्रथम अध्याय में ही ज्ञान के सन्दर्भ में **“मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलानि ज्ञानम्”** (१.९) ये पाँच भेद प्राप्त होते हैं जो कि स्थानांग, भगवती, अनुयोगद्वार एवं नदीसूत्र में आगत ज्ञान के प्रकार—**“पंचविहे णाणे पण्णत्ते, तं जहा—अभिणिबोहियणाणे सुयणाणे ओहिणाणे मणपज्जवणाणे केवलणाणे”** का ही संक्षिप्तीकरण है। अन्तर इतना ही है कि आभिनिबोधिक को मतिज्ञान कहा है।

दूसरे से पाँचवें तक चार अध्यायों में ज्ञेय तत्त्व की मीमांसा है— तत्त्वार्थ में ज्ञेय तत्त्व में जीव की मीमांसा के सन्दर्भ में जीव की परिभाषा **“उपयोगो लक्षणम्”** (२.८) कही है, जो भगवती के **“उवओग-लक्खणे जीवे”**

तथा उत्तराध्ययन के “जीवो उवओग-लक्खणो” पर आधारित है।

छठें से लेकर दसवें अध्याय में चारित्र्य विषयक चर्चा है—इसमें योग के प्रकार “कायवाङ्मनः कर्म योगः” (६.१) कहा है अर्थात्—काय, वचन और मन की त्रिपदी योग है जो भगवतीसूत्र की इस परिभाषा “तिविहे जोए पण्णत्ते, तं जहा—मणजोए, वइजोए, कायजोए” से ली हुई है।

वाचक ने सत् की परिभाषा देते हुए उसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत् (५.२९) कहा तथा द्रव्य का लक्षण किया— ‘गुणपर्यायवद् द्रव्यम्’ (५.३७) तथा “तद्भावाव्ययम् नित्यम्” (५.३०) जो कुन्दकुन्द के प्रवचनसार और पञ्चास्तिकाय में भी प्राप्त होता है। यथा—

अपरिच्चत्तसहावेणुप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं ।

गुणवं च सपज्जायं जं तं दव्वं ति वुच्चंति ।। प्रवचनसार, २.३

दव्वं सलक्खणियं उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं ।

गुणपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू ।। पञ्चा. १०

इसी तरह और भी अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार तत्त्वार्थसूत्र में सर्वत्र आगमों से सूत्रात्मक संग्रहण है फिर भी तत्त्वार्थसूत्र का अपना वैशिष्ट्य है जिसे आगे बताया जाएगा।

### तत्त्वार्थ की शैली पर प्रभाव

तत्त्वार्थ के समय के सन्दर्भ में विद्वानों में पर्याप्त मदभेद है। ईसा की प्रथम शताब्दी से लेकर चौथी-पाँचवीं शताब्दी तक उनका काल निर्धारित किया जाता रहा है। काल की दृष्टि से चिन्तन करें तो उस समय जैन आगमों एवं बौद्ध पिटकों के लम्बे एवं वर्णनात्मक सूत्र थे, जैन आगमों की प्राकृत भाषा में चली आ रही शैली की जगह वैदिक विद्वानों में संस्कृत भाषा की संक्षिप्त सूत्रों की रचना-शैली बहुत प्रतिष्ठित हो चुकी थी। जैन परम्परा में अब तक संस्कृत भाषा की संक्षिप्त सूत्रशैली में रचा कोई ग्रन्थ नहीं था जिसे उमास्वाति ने प्रारम्भ किया।

रचना के उद्देश्य के सन्दर्भ में विचार करें तो उमास्वाति ने भी अंतिम उद्देश्य मोक्ष को रखकर ही उसकी प्राप्ति का उपाय सिद्ध करने वाले सभी तत्त्वों का वर्णन अपने तत्त्वार्थ में किया। जैसा कि सभी भारतीय शास्त्रकारों द्वारा शास्त्र-रचना के विषय-निरूपण के अन्तिम उद्देश्य के रूप में मोक्ष को ही रखा जाता है चाहे वह कोई भी विषय रहा हो। प्रायः सभी भारतीय दर्शनों

(वेदान्त, बौद्ध, वैशेषिक, सांख्य, योग) का उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है।

उमास्वाति ने अपने सूत्र ग्रन्थ का प्रारम्भ भी मोक्षमार्ग प्रतिपादक सूत्र से ही किया है। दिगम्बर परम्परा में तो तत्त्वार्थसूत्र 'मोक्षशास्त्र' के नाम से ही प्रसिद्ध है।

अध्याय संख्या पर तत्त्वार्थसूत्रकार कणाद के वैशेषिकसूत्र से पर्याप्त प्रभावित हैं। तत्त्वार्थसूत्र १० अध्यायों में विभक्त है और सूत्र ३४४ हैं तथा कणाद का वैशेषिक सूत्र भी १० अध्यायों में बँटा हुआ है और सूत्र संख्या ३३३ है। इन दोनों की बाह्य रचना में इतना साम्य होते हुए भी विशेष अन्तर भी देखे जा सकते हैं कि तत्त्वार्थकार अपने सिद्धान्त की सिद्धि के लिए कहीं भी युक्ति या हेतु नहीं देते जबकि कणाद अपने सिद्धान्त की पुष्टि में पूर्वपक्ष-उत्तरपक्ष न करते हुए भी उनकी पुष्टि में हेतुओं का वर्णन करते हैं।<sup>४</sup> दिगम्बर और श्वेताम्बरों के तत्त्वार्थसूत्र की संख्या में कुछ अन्तर है।

### तत्त्वार्थ का वैशिष्ट्य

उमास्वाति का तत्त्वार्थ की रचना का मुख्य प्रयोजन संक्षेप में सूत्र शैली में जैन सिद्धान्तों को प्रस्तुत करना था इसलिए उन्होंने जैन दर्शन के सभी महत्त्वपूर्ण पक्षों को लेते हुए विस्तार से बचते हुए सूत्रशैली में विवेचन किया।

वाचक सूत्रकार के कई ऐसे मन्तव्य हैं जो दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों के अनुकूल नहीं हैं। यद्यपि वे मन्तव्य दार्शनिक दृष्टि से महत्त्व के नहीं हैं इसलिए उनकी चर्चा यहाँ नहीं की गयी है। सत्, द्रव्य, प्रमाण, नय आदि विषय के सन्दर्भ में वाचक की अपनी मौलिक सूझ है जो आगमकाल में प्रचलित नहीं थी। इस तरह के कुछ बिन्दुओं को लेकर तत्त्वार्थ का वैशिष्ट्य इस प्रकार है—

### सत्

भारतीय दर्शन के अन्तर्गत द्रव्य को पदार्थ, तत्त्व, सत् आदि नामों से जाना जाता है। जैन आगम साहित्य में इसके लिये 'द्रव्य' एवं 'तत्त्व' शब्द ही प्राप्त होता है, सत् नहीं। किन्तु दूसरे दर्शनों में शाश्वत पदार्थों के लिए 'सत्' शब्द प्रयुक्त हुआ है, जैसे ऋग्वेद के दीर्घतमा ऋषि कहते हैं "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" (१.१६४.४६)। उमास्वाति के सामने यह प्रश्न था कि जैन दर्शन में सत् किसे कहा जाए एवं उसकी क्या परिभाषा की जाए। उमास्वाति ने अपनी मेधा से द्रव्य को ही सत् कहा एवं उसे परिभाषित करते हुए कहा— 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्'। इस परिभाषा से उन्होंने

एकान्तनित्यवादी के दर्शन में आने वाले दोषों को दूर कर जैन दर्शन को परिणामी-नित्यवादी सद्धि किया अर्थात् जो उत्पाद और व्यय के होते हुए भी सद् रूप से मिटकर असत् नहीं हो, वह नित्य है। इस प्रकार सत् के निरूपण में उमास्वाति की विलक्षण योग्यता का पता चलता है।

### द्रव्य, गुण और पर्याय

जैन आगमों में द्रव्य, गुण और पर्याय के लक्षण उपलब्ध होते हैं। जैसे—‘गुणाण-आसओ दव्वं’<sup>५</sup> अर्थात् जो गुणों का आश्रय हो वह द्रव्य है। गुण को परिभाषित करते हुए कहा—“एगदव्वस्सिया गुणा”<sup>६</sup> अर्थात् जो एक द्रव्य के आश्रित हो वह गुण। पर्याय का लक्षण है—“लक्खणं पज्जवाणं तु उभओ अस्सिया भवे”<sup>७</sup> अर्थात् जो द्रव्य और गुण के आश्रित हो वह पर्याय है। तत्त्वार्थ में प्राप्त द्रव्य, गुण एवं पर्याय के लक्षण को देखकर ऐसा लगता है कि उमास्वाति ने आगम में प्राप्त लक्षणों का अवलम्बन तो लिया ही है, किन्तु उसके साथ कहीं-कहीं वैशेषिक परिभाषाओं एवं सूत्र शैली का प्रयोग भी इनमें किया है। जैसे—तत्त्वार्थ की द्रव्य परिभाषा—“गुणपर्यायवद् द्रव्यम्” (५.३७) जो शाब्दिक रचना में वैशेषिक के “क्रियागुणवत्” (१.१.१५) से स्पष्ट प्रभावित है। वाचक ने गुण का लक्षण करते हुए कहा है—“द्रव्याश्रया निर्गुणाः गुणाः” (५.४०) जो वैशेषिक के सूत्र “द्रव्याश्रय्यगुणवान्” (१.१.१६) से आंशिक प्रभावित है एवं वाचक ने पर्याय को “भावान्तरं संज्ञान्तरं च पर्यायः” (५.३७) ऐसा कहा है। इसमें अर्थ और व्यंजन दोनों को उभय दृष्टि से पर्याय का स्वरूप बतलाया गया है।

### पुद्गल

जैन आगमों में पुद्गल का लक्षण ‘ग्रहण’ किया है—“ग्रहण-लक्खणे णं पोग्गलत्थिकाए”<sup>८</sup> जीव अपने शरीर, इन्द्रिय, योग और श्वासोच्छ्वास रूप से पुद्गलों का ग्रहण करता है अर्थात् पुद्गल में जीव के साथ सम्बद्ध होने की क्षमता ‘ग्रहण’ गुण शब्द से आगमकार ने प्रतिपादित की है। इससे पुद्गल का स्वरूप बोध स्पष्ट नहीं होता है। उत्तराध्ययनसूत्र में वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से युक्त पुद्गल का लक्षण प्रतिपादित किया गया है।<sup>९</sup> वाचक ने भी उत्तराध्ययन की परिभाषा का ही अनुसरण करते हुए पुद्गल को स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण कहा। साथ ही पुद्गल को शब्द, बंध, सूक्ष्मत्व, संस्थान, भेद, तम, अन्धकार, छाया, आतप और उद्योत इन दस अवस्थाओं वाला कहा है।

पुद्गल द्रव्य के सन्दर्भ में वाचक का वैशिष्ट्य यही है कि उन्होंने द्रव्यों का साधर्म्य-वैधर्म्य बताते हुए पुद्गल को “रूपिणः पुद्गलाः” कहा है जो दूसरे द्रव्यों से पुद्गल का वैधर्म्य बताता है। यह पुद्गल का सबसे संक्षिप्त लक्षण है।

### काल

जहाँ तक काल द्रव्य का प्रश्न है जैन आगमों में काल को स्वतन्त्र द्रव्य के रूप में स्वीकार किया गया है। यह परम्परा श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों में ही देखने को मिलती है। इसलिए जहाँ लोक की परिभाषा की गई है वहाँ लोक को पंचास्तिकायमय कहा गया है। प्राचीन समय में भी काल को द्रव्य तो माना ही जाता था परन्तु उसका स्वरूप ज्यादा स्पष्ट नहीं था। अतः आगे चलकर उमास्वाति ने “कालश्च” सूत्र बनाकर लोक को षट्द्रव्यात्मक रूप में स्थापित किया।

### प्रमाण और ज्ञान विमर्श

प्रमाण-निरूपण के सन्दर्भ में वाचक की नई सूझ दिखाई देती है। जैन आगमों में पाँच ज्ञानों की स्पष्ट रूप से चर्चा है साथ ही उन्हें प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो प्रकारों में विभाजित भी किया गया है। उस समय विभिन्न दर्शनों में प्रमाण के तीन, चार और पाँच भेद प्रचलित थे। उसी के आधार पर जैन आगमों में तीन या चार प्रकार की प्रमाण-व्यवस्था बताई गई है। किन्तु वाचक ने इन दोनों का समन्वय कर दिया और मति आदि पाँचों ज्ञानों को ही प्रमाण कह दिया।<sup>१९</sup> इस प्रकार वाचक ने आगम में आगत ज्ञान के प्रत्यक्ष और परोक्ष दो भेदों को ध्यान में रखकर प्रमाण के भी दो भेद कर दिए और आगमों में उल्लिखित लोकानुसारी प्रमाण-व्यवस्था को न छोड़ते हुए अपनी सूझ से प्रमाण और पंचज्ञान का समन्वय सिद्ध किया।

### नय

अनुयोगद्वार के अन्तर्गत तत्त्व के अभिगम (ज्ञान) के लिए चार मूल द्वार—उपक्रम, निक्षेप, अनुगम और नय बतलाए हैं। यहाँ प्रमाण को उपक्रम के प्रभेद के रूप में स्वीकार किया गया है स्वतंत्र रूप से नहीं। दार्शनिक युग में प्रमाण को स्वतंत्र रूप से तत्त्व अभिगम में स्थान दिया गया। लगता है यह उमास्वाति का ही प्रभाव है क्योंकि सर्वप्रथम उन्होंने ही कहा— ‘प्रमाणानवैरधिगमः’। हालांकि तात्त्विक दृष्टि से दोनों में कोई भेद नहीं था किन्तु वस्तु के सकल एवं विकल या सम्पूर्ण एवं आंशिक ज्ञान के आधार पर दोनों का पृथक् रूप ग्रहण किया गया। प्रमाण—जो अखण्ड वस्तु का

ज्ञान करवाए और नय—जो वस्तु का आंशिक ज्ञान करवाए।

अनुयोगद्वार में नय के सात भेद बतलाए गए हैं किन्तु श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार उमास्वाति ने नय के पाँच ही भेद बताए हैं। नय के पाँच भेद कहने से उमास्वाति पर यह आक्षेप नहीं लगाया जा सकता कि उन्होंने आगमिक परम्परा का उल्लंघन किया है बल्कि यह तो उनकी सूत्रात्मक शैली का उदाहरण प्रस्तुत करता है। क्योंकि उन्होंने अग्रिम सूत्र में शब्द नय के तीन भेद करके सात की संख्या पूर्ण की है। ऐसा इसलिए कहा जा सकता है क्योंकि आर्यरक्षित ने ही अनुयोगद्वार में 'तिण्हं सद्हनयाणं' कहकर शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत को शब्दनय की संज्ञा दी है। दिगम्बरों के तत्त्वार्थसूत्र में सीधे सात भेद गिनाए गए हैं।

इस प्रकार उन्होंने आगम का ही अनुसरण किया है, न कि उस परम्परा से हटकर कुछ अन्य कहा है। इसी का परिणाम है कि उमास्वाति ने आगमों के आधार पर संक्षिप्त सूत्रशैली में अपनी मेधा से तत्त्वार्थसूत्र की रचना कर जैन दर्शन को नवीन रूप में प्रस्तुत किया है।

### सन्दर्भ

१. आगम युग का जैन दर्शन, दलसुखभाई मालवणिया, पृ. २०६-२०७
- २.१ तत्त्वार्थसूत्र जैनागम समन्वय, उपाध्याय आत्मारामजी महाराज, पृ. ३
- २.२ तत्त्वार्थसूत्र, विवेचक पं. सुखलालजी, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, भूमिका, पृ. १५-२७
- २.३. तत्त्वार्थाधिगमसूत्र (स्वोपज्ञभाष्य और सिद्धसेनगणि की टीका सहित), भूमिका, पृ. ३६-४०
- २.४ तत्त्वार्थसूत्र, विवेचक पं. सुखलालजी, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, पृ. १०५-१०७
३. सागरमल जैन, तत्त्वार्थसूत्र और उसकी परम्परा, पृ. ६
४. तत्त्वार्थसूत्र—विवेचक पं. सुखलालजी, भूमिका, पृ. ४५
५. उत्तराध्ययनसूत्र २८.६
६. वही
७. वहीं
८. भगवतीसूत्र, १३.४.१८१
९. सद्दन्धयारउज्जोओ पहा छायातवेइ वा ।

वण्णरसगन्धफासा पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥ उत्तराध्ययनसूत्र २८.१२

१०. तत्त्वार्थसूत्र, ५.१

११. मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम्। तत् प्रमाणे।" वही, १.१०

## ध्यान : एक अनुशीलन

डॉ. रूबी जैन\*

[ इस लेख में लेखिका ने आगम का सहारा लेकर ध्यान को परिभाषित किया है। तत्त्वार्थसूत्र में वर्णित ध्यान-विवेचन से यह लेख मेल खाता है। ]

जैनदर्शन में मोक्ष को ही जीव का परम लक्ष्य माना गया है। परन्तु कर्मबन्ध इस मोक्ष-प्राप्ति में बाधक तत्त्व है। इसी मोक्ष एवं कर्मबन्ध के परिप्रेक्ष्य में जैन साहित्य में ध्यान का विशद विवेचन उपलब्ध होता है।

‘ध्यान’ भ्वादिगण की ‘ध्यै’ धातु से ‘ल्युट्’ प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। ‘ध्यै’ धातु सोचने, मनन करने, विचार करने, चिन्तन करने आदि अर्थों में प्रयुक्त होती है।<sup>१</sup> ल्युट् प्रत्यय पूर्वक इसका अर्थ मनन, विमर्श, विचार तथा चिन्तन है।<sup>२</sup> पातञ्जल योग दर्शन में ‘ध्यान’ शब्द का प्रयोग एक विशेष अर्थ ‘धारणावाहिक विचारणा’ में हुआ है<sup>३</sup> जो कि ‘धारणा’ एवं ‘समाधि’ के साथ मिलकर ‘संयम’ का वाचक माना गया है।<sup>४</sup> परन्तु तदनुसार ध्यान केवल सुध्यान का ही वाचक प्रतीत होता है जबकि ध्यान शब्द के व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ के अनुसार तो ध्यान अच्छा भी हो सकता है तथा बुरा भी। इसमें गीता भी प्रमाण है जहाँ कहा गया है कि ‘ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते’ अर्थात् विषयों के चिन्तन से व्यक्ति में उनके प्रति आसक्ति पैदा हो जाती है।<sup>५</sup> अतः स्पष्ट ही है कि ध्यान ऐन्द्रिक विषयों के प्रति भी हो सकता है जो कि समाधि तथा आत्मस्वरूप प्राप्ति का बाधक होता है तथा इसके विपरीत आत्मरमण रूपी ध्यान समाधि रूप है जो कि सर्वथा ग्राह्य है।

जैनदर्शन के मान्य आचार्य, तत्त्वार्थ-सूत्रकार के अनुसार ध्यान का लक्षण ‘एकाग्र-चिन्ता-निरोध’ है।<sup>६</sup> चिन्ता अन्तःकरण का व्यापार कहा गया है तथा गमन, भोजन, शयन और अध्ययन आदि विविध क्रियाओं में भटकने वाली चित्तवृत्ति का एक क्रिया में रोक देना निरोध है। जिस प्रकार वायुरहित प्रदेश में दीपशिखा अपरिस्पन्द (स्थिर) रहती है उसी तरह निराकुल देश में एक लक्ष्य बुद्धि और शक्तिपूर्वक रोकी गई चित्तवृत्ति बिना व्याक्षेप के वहीं स्थिर

\* डी.ए.वी. कालेज, होशियारपुर।

रहती है, अन्यत्र नहीं भटकती।<sup>१०</sup> दूसरे शब्दों में 'नाना पदार्थों का अवलम्बन लेने से चिन्ता परिस्पन्दवती होती है। उसे अन्य अशेष मुखों से लौटा कर एक विषय में नियमित करना एकाग्र-चिन्ता-निरोध कहलाता है।<sup>११</sup> सूत्र में दिया गया 'एकाग्र' शब्द व्यग्रता की निवृत्ति के लिए है। ज्ञान व्यग्र होता है तथा ध्यान एकाग्र।<sup>१२</sup> जैन-आचार्यों ने ध्यान की उत्कृष्ट अवधि एक अन्तर्मुहूर्त (अड़तालीस मिनट से कम) तक मानी है। उनके अनुसार इसके बाद एक ही ध्यान लगातार नहीं रह सकता।<sup>१३</sup> ज्ञातव्य है कि यह चिन्तानिरोध अभाव-रूप नहीं किन्तु भावान्तररूप है।<sup>१४</sup>

एकाग्र-चिन्ता-निरोध रूप यह ध्यान आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान के भेद से चार प्रकार का है।<sup>१५</sup> ये चारों ध्यान आगे चार-चार प्रकार के हैं तथा चार-चार लक्षणों<sup>१६</sup> से प्रत्यभिज्ञेय हैं। प्रथमतः इनमें से **आर्तध्यान के चार प्रकारों** को इस प्रकार बतलाया गया है। (१) **अनिष्ट-संयोगे-** मन को प्रिय नहीं लगने वाले विषयों के या पस्थितियों के उपस्थित होने पर उनसे दूर होने अथवा दूर करने के सम्बन्ध में निरन्तर आकुलतापूर्ण चिन्तन करना। (२) **इष्ट-वियोगे-** मन को प्रिय लगने वाले विषयों का वियोग होने पर या इष्ट के प्राप्त होने पर उनके अवियोग अर्थात् वे सदा अपने साथ रहें, इस प्रकार निरन्तर आकुलतापूर्ण चिन्तन करना। (३) **वेदनायाम्-** रोग जन्य कष्ट हो जाने पर उनके मिटने के सम्बन्ध में निरन्तर आकुलतापूर्ण चिन्तन करना। (४) **निदाने-** पूर्व-सेवित कामभोगों की पुनः प्राप्ति हेतु निरन्तर आकुलतापूर्ण चिन्तन करना।<sup>१७</sup> आर्तध्यान को निम्न चार प्रकार से भी जाना जा सकता है— क्रन्दनता (रोना), शोचनता (चिन्ता या शोक करना) तेपनता (बार-बार अश्रुपात करना), परिदेवनता (विलाप करना यथा-हाय! मैंने पूर्व जन्म में कितना बड़ा पाप किया जिसका यह फल मिल रहा है।) इत्यादि।<sup>१८</sup>

**रौद्रध्यान के चार प्रकार** इस प्रकार हैं— (१) **हिंसानुबन्धी-** हिंसा करना अथवा करने की योजनायें बनाना<sup>१९</sup> आदि। (२) **मृषानुबन्धी-** दूसरों को छलने, ठगने, धोखा देने, छिप कर पापाचरण करने, झूठा प्रचार करने, झूठी अफवाहें फैलाने, मिथ्या दोषारोपण करने की योजनायें बनाते रहना आदि मृषानुबन्धी रौद्रध्यान हैं। (३) **स्तेयानुबन्धी-** तीव्र लोभ आदि के वशीभूत होकर दूसरे की वस्तु का हरण करने की चित्तवृत्ति होना स्तेयानुबन्धी रौद्रध्यान है। (४) **संरक्षणानुबन्धी-** शब्दादि पाँच विषयों के साधनभूत धन की रक्षा करने की चिन्ता करना और 'न मालूम दूसरा क्या करेगा?' इस आशंका

से दूसरों का उपघात करने की कषाययुक्त चित्तवृत्ति रखना संरक्षणानुबन्धी रौद्रध्यान है।<sup>१७</sup>

**रौद्रध्यान के चार दोष-** (१) असन्न दोष- हिंसा प्रभृति दोषों में से किसी एक दोष में अत्यधिक लीन रहना। (२) बहु दोष- हिंसा आदि बहुदोषों में संलग्न रहना। (३) अज्ञान दोष- मिथ्या शास्त्र के संस्कारवश हिंसा आदि प्रतिकूल कार्यों में धर्मारोधना की दृष्टि से प्रवृत्त रहना। (४) आमरणान्त दोष- सेवित दोषों के लिये मृत्युपर्यन्त पश्चात्ताप न करते हुये उनमें अनवरत प्रवृत्तिशील रहना।<sup>१८</sup>

स्वरूप की दृष्टि से धर्मध्यान के चार भेद इस प्रकार हैं—<sup>१९</sup>

(१) आज्ञा विचय- आप्तपुरुष का वचन आज्ञा कहलाता है। आप्तपुरुष वह है, जो राग-द्वेष आदि से असंपृक्त है। अतः वीतराग प्रभु की आज्ञा, प्ररूपणा या वचन के अनुरूप वस्तु तत्त्व के चिन्तन में मन की एकाग्रता। (२) अपायविचय- अपाय का अर्थ दुःख है, उसके हेतु राग-द्वेष, विषय, कषाय हैं, जिनसे कर्म उपचित होते हैं। 'सर्व अपाय-नाश तथा आत्मसमाधि की उपलब्धि' इस ध्यान में चिन्तन का विषय होते हैं। (३) विपाक विचय- विपाक का अर्थ है फल। इस ध्यान की चिन्तनधारा कर्मों के विपाक या फल पर आधृत होती है। (४) संस्थान विचय- लोक, द्वीप, समुद्र आदि के आकार का एकाग्रतया चिन्तन करना।<sup>२०</sup>

धर्म ध्यान की पहचान निम्न लक्षणों से होती है—

(१) आज्ञा रुचि- वीतराग प्रभु की आज्ञा में, प्ररूपणा में अभिरुचि होना, श्रद्धा होना। (२) निसर्ग रुचि- स्वभावतः धर्म में रुचि होना। (३) उपदेश रुचि- साधु या ज्ञानी के उपदेश से धर्म में रुचि होना अथवा धर्मोपदेश सुनने में रुचि होना। (४) सूत्ररुचि- आगमोक्त सूत्रों में रुचि या श्रद्धा होना।<sup>२१</sup>

धर्मध्यान के चार आलम्बन इस प्रकार हैं—

(१) वाचना- सत्य सिद्धान्तों का निरूपण करने वाले आगम ग्रन्थों या तत्सम्बन्धित ग्रन्थों को पढ़ना। (२) पृच्छना- अधीत या ज्ञात-विषय में स्पष्टता हेतु जिज्ञासा भाव से अपने मन में ऊहापोह करना, ज्ञानीजनों से पूछना, समाधान पाने का यत्न करना। (३) परिवर्तना- (अनुप्रेक्षा) ज्ञात विषय में मानसिक, वाचिक वृत्ति लगाना। (४) धर्मकथा (धर्मोपदेश)- धर्म-कथा करना, महापुरुषों के जीवनवृत्तों के प्रेरक प्रसंगों द्वारा आत्मानुशासन में गतिशील होना।<sup>२२</sup>

धर्मध्यान की चार अनुप्रेक्षाएँ हैं—

(१) अनित्यानुप्रेक्षा— सभी ऐहिक वस्तुयें अनित्य हैं— अशाश्वत हैं, इस प्रकार का चिन्तन करना, ऐसे विचारों का अभ्यास करना। (२) अशरणानुप्रेक्षा— 'जन्म, जरा, रोग, वेदना, मृत्यु आदि के समय कोई शरण नहीं है' ऐसा बार-बार चिन्तन करना। (३) एकत्वानुप्रेक्षा— मृत्यु, वेदना, शुभ-अशुभ, कर्मफल इत्यादि को जीव अकेला ही भोगता है। उत्थान-पतन, सुख, दुःख आदि का सारा दायित्व एकमात्र जीव का अपना अकेले का ही है अतः क्यों न प्राणी आत्मकल्याण में जुटे, इस प्रकार की वैचारिक प्रवृत्ति जगाना। (४) संसारानुप्रेक्षा— संसार की असारता का बारम्बार चिन्तन करना।

**शुक्ल ध्यान**— स्वरूप की दृष्टि से शुक्लध्यान के चार भेद इस प्रकार हैं—

(१) पृथक्त्व-वितर्क-सविचार— वितर्क का अर्थ श्रुतावलम्बी विकल्प है। पूर्वधर मुनि पूर्वश्रुत-विशिष्ट ज्ञान के अनुसार किसी एक द्रव्य का आलम्बन लेकर ध्यान करता है किन्तु उसके किसी एक परिणाम या पर्याय पर स्थिर नहीं रहता, उसके विविध परिणामों पर संचरण करता है— शब्द से अर्थ पर अर्थ से शब्द पर तथा मन, वाणी एवं देह में एक दूसरे की प्रवृत्ति पर, संक्रमण करता है, अनेक अपेक्षाओं से चिन्तन करता है। ऐसा करना पृथक्त्व-वितर्क-विचार शुक्लध्यान है।

(२) एकत्व-वितर्क अविचार— पूर्वधर, पूर्वश्रुत का ज्ञाता पूर्वश्रुत-विशिष्ट ज्ञान के किसी एक परिणाम पर चित्त को स्थिर करता है। ऐसा ध्यान जो शब्द, अर्थ, मन, वाणी तथा देह पर संक्रमण नहीं करता एकत्व वितर्क अविचार की संज्ञा से अभिहित है।

(३) सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाति (अनिवर्ती)— जब केवली आयु के अन्त समय में योग-निरोध का क्रम प्रारम्भ करते हैं, तब वे मात्र सूक्ष्म काय-योग का अवलम्बन लिये होते हैं, उनके और सब योग निरुद्ध हो जाते हैं केवल श्वास-प्रश्वास जैसी सूक्ष्म क्रिया ही अवशेष रह जाती है। वहाँ ध्यान से च्युत होने की कोई संभावना नहीं रहती। उस अवस्था का ध्यान सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाति शुक्लध्यान है।

(४) समुच्छिन्न-क्रिया-अनिवृत्ति— यह ध्यान मोक्ष का साक्षात् कारण है। यह वह स्थिति है, जब सब प्रकार के स्थूल तथा सूक्ष्म मानसिक, वाचिक

तथा दैहिक व्यापारों से आत्मा सर्वथा पृथक् हो जाता है तब इस ध्यान द्वारा अवशेष चार अघातिकर्म- वेदनीय, नाम, गोत्र तथा आयु भी नष्ट हो जाते हैं।<sup>२६</sup> शुक्लध्यान के चार लक्षण बतलाये गये हैं—<sup>२७</sup> **विवेक-** देह से आत्मा की भिन्नता, (२) **व्युत्सर्ग-** निःसंग भाव से शरीर आदि सभी उपकरणों से ममता हटा लेना, (३) **अव्यथा-** पीड़ा तथा कष्ट आने पर आत्मस्थता नहीं खोना, (४) **असंमोह-** देव आदि द्वारा रचित माया जाल में तथा सूक्ष्म भौतिक विषयों में संमूढ या विभ्रान्त न होना।

शुक्लध्यान के चार आलम्बन इस प्रकार कहे गये हैं— (१) **क्षान्ति-** क्षमाशीलता। (२) **मुक्ति-** लोभ आदि के बन्धन से उन्मुक्तता। (३) **आर्जव-** ऋजुता, सरलता, निष्कपटता। (४) **मार्दव-** मृदुता-कोमलता, निरभिमानता।<sup>२८</sup>

शुक्लध्यान की चार अनुप्रेक्षयें बतलाई गई हैं। वे इस प्रकार हैं—

(१) **अपायानुप्रेक्षा-** आत्मा द्वारा आचरित कर्मों के कारण उत्पद्यमान अपाय- अनर्थों के सम्बन्ध में पुनः-पुनः चिन्तना। (२) **अशुभानुप्रेक्षा-** संसार के अप्रशस्त रूप का चिन्तन, (३) **अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा-** संसार चक्र की अनन्त काल तक चलते रहने की वृत्ति (स्वभाव) पर पुनः-पुनः चिन्तना। (४) **विपरिणामानुप्रेक्षा-** वस्तु जगत् की परिवर्तनशीलता पर चिन्तन करना।<sup>२९</sup>

इनमें से आर्त और रौद्र इन दो ध्यानों को अप्रशस्त, अपध्यान कहा गया है। ये ध्यान कर्मबन्ध का हेतु होने से तथा भवभ्रमण एवं दुःख का कारण होने से हेय हैं।<sup>३०</sup> जबकि अन्तिम दो ध्यान (धर्म और शुक्ल) प्रशस्त हैं, आचरणीय हैं, ग्राह्य हैं, ये मोक्षमार्ग को प्रशस्त करते हैं।<sup>३१</sup>

यदि इन चारों के सामान्यातिसामान्य (स्थूलतम) स्वरूप पर विचार करें तो हम पायेंगे कि प्रथम दो ध्यान नकारात्मक विचार शृंखला के द्योतक हैं जो स्वास्थ्य तन्त्र को भी दुष्प्रभावित करते हैं।

Dr. William Boericke अपनी पुस्तक *Homeopathic Materia Medica*, पृष्ठ ८ पर लिखते हैं कि छोटी से छोटी प्रत्येक बीमारी, भय, चिन्ता तथा परेशानी से जुड़ी हुई होती है<sup>३२</sup> तथा एक अन्य स्थान, पृष्ठ ३४२ पर वे एक बीमारी के लक्षणों में अश्रुपात, आहें भरना, सिसकियाँ भरना, विषादग्रस्त होना, बात न करना, शोचनता पूर्ण होना, उदास होना, आदि गिनाये हैं।<sup>३३</sup> इसी प्रकार अवसाद (Depression) नामक बीमारी के लक्षण से कौन अपरिचित है। इसके मूल में भी एक प्रकार का आर्तध्यान ही है। यदि इन ऊपर कथित लक्षणों को तथा आर्तध्यान के लक्षणों को मिलायें

तो समानता स्पष्ट उद्घाटित हो जाती है। तात्पर्यार्थ केवल इतना है कि न केवल आध्यात्मिक दृष्टि से बल्कि शरीर-विज्ञान की दृष्टि से भी तथा मनोविज्ञान की दृष्टि से भी नकारात्मक ध्यान अथवा अपध्यान त्याज्य हैं क्योंकि अपध्यान के कारण शरीर में इस प्रकार के परिवर्तन होते हैं जिससे मनुष्य का समस्त पाचनतन्त्र तथा परम्परया सम्पूर्ण शरीरतन्त्र दुष्प्रभावित हो उठता है। दूसरी तरफ सुध्यान का मोटा स्वरूप प्रसन्नचित्त या मन से है। इस प्रकार का सुध्यान आध्यात्मिक एवं लौकिक दोनों दृष्टियों से कल्याणकारी है। इससे ऊर्जा का प्रसार होता है। अलौकिक आनन्द मिलता है।

### सन्दर्भ

१. संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आपटे, पृ. ५०३
२. वही, पृ. ५०२
३. 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्'- ३.२ पातञ्जलयोगदर्शनम्, स्वामी श्री ब्रह्मलीन मुनि
४. 'तदेतद्धारणाध्यानसमाधिः त्रयमेकत्र संयमः' पातञ्जलयोगदर्शन की सूत्र संख्या ३.४ पर व्यासभाष्य-स्वामी श्री ब्रह्मलीन मुनि म.
५. श्रीमद्भगवद्गीता- पृ. ६८, गीता प्रेस, गोरखपुर, २०६२
६. तत्त्वार्थसूत्र, सं. पं. सुखलाल संघवी, ९.२७
७. तत्त्वार्थवार्तिक, पं. महेन्द्र कुमार जैन, (भाग-२), ९.२७, पृ. ७९०
८. सर्वार्थसिद्धि, पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री, ९.२७, पृ. ४४४-२३-२५
९. तत्त्वार्थवार्तिक, पं. महेन्द्र कुमार जैन, (भाग-२), ९.२७, पृ. ७९०
१०. तत्त्वार्थवार्तिक (हिन्दी सार), भाग-२, ९०२७, पृ. ७९०
११. वही, तथा सर्वार्थसिद्धि, ९.२७.४४५.१८
१२. (i) व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र, (भाग-४), २५.७.२३७  
आगम प्रकाशन समिति, संपा. श्री अमर मुनि, ब्यावर, राज.  
ज्ञाणे चउव्विहे पण्णते, तं जहा-अट्टे ज्ञाणे, रोद्वे ज्ञाणे, धम्मज्ञाणे, सुक्के ज्ञाणे।  
(ii) औपपातिकसूत्र, सूत्र ३०, पृ. ४९ डॉ. छगनलाल शास्त्री, काव्यतीर्थ  
(iii) तत्त्वार्थसूत्र, ९.२८
१३. (i) भगवतीसूत्र (व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र) भाग-४, २५.७.२३७-२४९  
(ii) औपपातिकसूत्र, सूत्र संख्या ३० पृ. ४९-५०
१४. वही
१५. वही

३८ : श्रमण, वर्ष ६१, अंक ४ / अक्टूबर-दिसम्बर-१०

१६. व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र, भाग-४, २५.७.२४०, पृ. ५०७ तथा ५०९
१७. औपपातिकसूत्र, पृ. ७०
१८. व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र, भाग-४, २५.७.२४२, पृ. ५०७
१९. औपपातिकसूत्रम्, पृ. ७०
२०. वही, पृ. ७१
२१. औपपातिकसूत्र, पृ. ७१
२२. वही
२३. व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र, भाग-४, २५.७.२४६ पृ. ५०८
२४. औपपातिकसूत्र, सूत्र ३०, पर्याय- क्षण-क्षणवर्ती अवस्था विशेष
२५. औपपातिकसूत्र, पृ. ७४
२६. वही
२७. औपपातिकसूत्र, पृ.
२८. वही
२९. सर्वार्थसिद्धि, ९.२९.४४६.५
३०. तत्त्वार्थसूत्र, ९.२९
३१. *Homeopathic Materia Medica*, Page 8 ; Dr. W. Boericke Jain,  
Publishers Pvt. Ltd., New Delhi
32. Ibid



## पुण्यकुशलगणि विरचित भरतबाहुबलिमहाकाव्य में जैनधर्म एवं दर्शन

डॉ० मधुबाला जैन\*

[ डॉ. मधुबाला जैन ने इस आलेख में भरत-बाहुबलि महाकाव्य के माध्यम से जैनधर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इसके काव्य-वैशिष्ट्य को नहीं बतलाया है। आशा है, आगे इसके काव्य-वैशिष्ट्य को भी निरूपित करेंगी। ]

श्रमण-संस्कृति के अनन्य उपासक पुण्यकुशलगणि का एकमात्र महाकाव्य “भरतबाहुबलिमहाकाव्य” जैन विश्व भारती, लाडनू से प्रकाशित है। इस महाकाव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि आचार्य पुण्यकुशलगणि ने समाज में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करने हेतु इस महाकाव्य की रचना की है। उनका यह महाकाव्य वाक्य-विन्यास, पद-गरिमा, काव्य-सौष्ठव आदि काव्योचित सभी गुणों से युक्त है।

पुण्यकुशलगणि ने अध्यात्म-प्रधान श्रमण-संस्कृति को अपनाकर समाज को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है। उन्होंने जैन धर्म एवं दर्शन के स्वरूप को नये आयाम प्रदान किये हैं। धर्म-ध्यान एवं शुक्लध्यान को अपनाकर उन्होंने कर्म-काण्ड आदि बाह्य आडम्बरों को छोड़ने का सन्देश दिया है। वे जन-जन के चित्त को अपनी ओर आकृष्ट कर लेने वाले थे। सार्थकनामा वे पुण्य-कार्यों में ही जीवन की सार्थकता समझते थे। उन्होंने अपनी काव्य-प्रतिभा से रसाढ्य, रम्यपदालंकार-युक्त, हृद्य एवं मुक्तिपथ को दर्शाने वाले महाकाव्य की रचना कर संस्कृत-साहित्य के भण्डार को अपूर्व योगदान किया है।

धर्म का उदय मानव की आध्यात्मिक रुचि का प्रतिफलन है। ‘धर्म’ शब्द ऋग्वेद में धारण करने के अर्थ में आया है।<sup>१</sup> महाभारत में भी ‘धारणात् धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः’ इस कथन द्वारा धर्म का धारण अर्थ ही लिया गया है। महाभारतकार के अनुसार न केवल मानव-समाज ही धर्म की आधारशिला पर टिका हुआ है अपितु सम्पूर्ण जगत् की प्रतिष्ठा भी धर्म में

\* अतिथि प्राध्यापक, राजकीय महाविद्यालय, नाथद्वारा १०७, गोविन्द नगर, सेक्टर १३, उदयपुर, राजस्थान।

ही है।<sup>२</sup> जिस प्रकार दाहकता अग्नि का धर्म है तथा गंध पृथ्वी का विशेष धर्म है वैसे ही कुछ विशेषताओं को धारण कर व्यक्ति मानव कहलाता है। अथर्ववेद में सत्य, दीक्षा, तप, ब्रह्म, यज्ञ आदि को धर्मतत्त्व बतलाया गया है।<sup>३</sup> वस्तुतः धर्मतत्त्व मानव-समाज एवं सृष्टि का नियामक है।

धर्म का स्वरूप परिवर्तनशील रहा है। वैदिक धर्म यज्ञ-प्रधान था। किन्तु उपनिषत्काल में धर्म का यज्ञ से विशिष्ट सम्बन्ध क्रमशः समाप्त होने लगा और यज्ञ की अपेक्षा नैतिक गुणों पर अधिक बल दिया जाने लगा। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार धर्म तीन प्रकार का माना गया है -

१. गृहस्थधर्म- जिसमें यज्ञ, अध्ययन एवं दान कार्य होते हैं।
२. तप-धर्म- जिसमें व्रत, नियम आदि का पालन किया जाता है।
३. नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धर्म- जिसमें ब्रह्मचारी सदैव ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए अन्त तक आचार्य कुल में रहे।<sup>४</sup>

धर्म की विशद व्याख्या स्मृति-शास्त्रों में बतायी गयी है। महाभारत के अनुसार त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) का सार धर्म ही है।<sup>५</sup> “धर्म” प्राणि-मात्र को धारण करने वाला है। जैनों के अनुसार वस्तु-स्वभाव धर्म है। किन्तु आचार-धर्म का बोध जैन-धर्म का प्रतिपाद्य है एवं वस्तु-धर्म का बोध जैन-दर्शन का विषय है। अन्य धर्मों एवं दर्शनों में भी इन विषयों का विशद विवेचन हुआ है। प्रत्येक दर्शन से तत्तद् आचार धर्म अनुप्राणित होता है। जैन-दर्शन में चिंतन का जो नवनीत निकला उसे धर्म के विराट् फलक पर प्रस्तुत करने का जैन-कवियों का प्रयास सराहनीय है। उन्होंने मनुष्यों के लौकिक एवं पारलौकिक उद्देश्यों को समन्वित कर धर्म का स्वरूप निर्धारित किया है। लौकिक अभ्युदय एवं पारलौकिक निःश्रेयस् दोनों सम्मिलित रूप में धर्म कहलाता है - यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः।

धर्म अन्तर्दृष्टि विशुद्ध आन्तरिक चेतना से अनुप्राणित होती है। भक्ति, कर्म, ज्ञान, साधना, अनुशासन आदि गुण धर्म का क्रियान्वयन है। धर्मानुष्ठानी दूसरों के मनोगत भावों का पारखी होता है। वह दूसरों के हृदयगत भावों को उसकी आकृति एवं चेष्टाओं से सहज जान लेता है। इसे एक दृष्टांत द्वारा सहज ही समझा जा सकता है। भरत द्वारा प्रेषित दूत को देखकर ही बाहुबली सब कुछ जान गये। फिर भी उन्होंने अपने बड़े भाई भरत के प्रति पूर्ण श्रद्धा भाव से उस दूत से आने का कारण पूछा। उसने भरत की महिमा का विस्तार से वर्णन करके उनके चक्र के शस्त्रागार में प्रविष्ट न होने का

कारण आप द्वारा भरत की अधीनता स्वीकार न करना बताया। अतः आपको भरत की अधीनता स्वीकार कर लेनी चाहिए। यह सुनकर क्षत्रिय धर्म का पालन करने वाले बाहुबली, दूत की वाचालता एवं भरत की धृष्टता को जानकर हंसने लगे -

**दूत ! त्वत्स्वामिनो धार्ष्ट्यं, वाचालत्वं तवोद्धतम्।**

**एतद्द्वयं ममात्यन्तं, हास्यमास्ये तनोति हि।।<sup>९</sup>**

बाहुबली का यह हास्य उनके शौर्य और पराक्रम की पराकाष्ठा को व्यंजित करता है।

“सर्वार्थसिद्धि” ग्रन्थ में धर्म के व्युत्पत्तिमूलक अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है कि “इष्टे स्थाने धत्ते इति धर्मः”। अर्थात् जो हमें इष्ट स्थान की ओर ले जाता है वह धर्म है। अतः धर्म भी व्यक्ति-विशेष के लिए विशिष्ट होता है। बाहुबली स्वाभिमानी राजा थे। भ्रातृ-प्रेम और राजधर्म में राजधर्म प्रधान है। यही कर्तव्य-बोध भरत एवं बाहुबली दोनों को भ्रातृ-प्रेम को तिलांजलि देने का कारण बनता है और उसकी परिणति महायुद्ध में होती है। युद्ध ही राजाओं की नियामक मर्यादा होती है। सज्जन पुरुष अलंघनीय धर्म, अर्थ और काम का युगान्त में भी उल्लंघन नहीं करते हैं -

**सन्तो युगान्तेऽप्यविलङ्घनीयान् ।**

**धर्मार्थकामान् न विलङ्घयन्ति ।।<sup>१०</sup>**

धर्म वही श्रेष्ठ है जो लोक मंगलकारी हो। सांसारिक प्राणियों की रक्षा करना अहिंसा धर्म है। इस धर्म का मूल दया है - धर्मो नाम दयामूलः। बौद्धपाहुड़ में भी ‘धम्मो दयाविसुद्धो’ कहा है। दयाभाव से अन्तःकरण में विद्यमान मोह, राग-द्वेष, हिंसा, क्रोध आदि कषाय-भाव नष्ट हो जाते हैं। यह दयामय धर्म दो प्रकार का होता है - सकल और विकल। सकल धर्म को धारण करने वाले जैन-मुनि होते हैं और विकल धर्म का पालन करने वाले श्रावक (सद्गृहस्थ) होते हैं। अतः सकलधर्म, मुनिधर्म तथा विकलधर्म गृहस्थधर्म कहलाता है।

सकलधर्म का पालन जैन मुनि ही कर सकते हैं। घर आदि समस्त परिग्रहों का त्याग कर देने वाले मुनि सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्चारित्र्य वाले होते हैं। श्रावक एवं मुनि-चरित पर टिप्पणी करते हुए अमृतचन्द्रसूरि ने बताया कि सर्वथा त्यागरूप महाव्रत के अधिकारी मुनिराज होते हैं और एकदेशत्याग रूप अणुव्रत के अधिकारी श्रावक या उपासक होते हैं। मोक्ष-

प्राप्त करने के लिए अणुव्रतधारी श्रावक ही महाव्रतधारी मुनि हो सकता है। युद्ध के लिए प्रयाण करने पर श्रावक भरत ने बाहुबली की सीमा में विद्यमान जैन-मन्दिर में भगवान् ऋषभ की पूजा-अर्चना की। वहां उन्हें एक मुनि मिले। भरत ने उन्हें पहचान कर दीक्षा लेने का कारण पूछा। प्रत्युत्तर में उन मुनि ने बताया कि भरत के साथ युद्ध में पराजित होकर विरक्त हो गये और जिन-दीक्षा ग्रहण कर ली। यह जानकर भरत को युद्ध की विभीषिका एवं विनाश की परिकल्पना का पुनराभास हुआ। वे भी अन्तर्मन से मुनिचर्या का पालन करने की इच्छा अभिव्यक्त करते हैं किन्तु अपने आपको कर्मों से बंधा हुआ कहकर वैसा करने में असमर्थता प्रकट करते हैं -

**इच्छामि चर्यां भवतोपपन्नां, कर्माणि मे नो शिथिलीभवन्ति।**

**तैरेव बद्धो लभतेऽत्र दुःखं, जीवस्तु पाशैरिव नागराजः॥८**

वस्तुतः जैनधर्म की आचार-संहिता में मुनि-धर्म ही श्रेष्ठ धर्म है। इसी धर्म में शान्तरस का सूर्य चित्तवृत्तिरूपी उदयाचल पर उदित होता है। अतएव श्रावकों के हृदय-कमल उनके दर्शन मात्र से विकसित हो जाते हैं -

**त्वच्चित्तवृत्तिप्रथमाद्रिचूलां, शमांशुमाली समुदेत्युपेत्य।**

**ततोऽस्मदीयं हृदयारविन्दं, विकसितामेति विलोकनेन॥९**

जैन-मुनि-धर्म विश्व के सभी धर्मों में अद्वितीय है। इसमें आदितः समस्त परिग्रहों का त्याग कर सत्य, अहिंसा, अस्तेय एवं पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना होता है। तपःसाधना इस धर्म का प्राण है। अतः जैन-काव्यों में नायक एवं प्रतिनायक अन्त में प्रव्रजित होकर मुनि-दीक्षा ग्रहण करते हैं। यहां पर भी विजयी प्रतिनायक बाहुबली महाव्रतधारी मुनि बन जाते हैं -

**मुनिरेष बभूव महाव्रतभृत्, समरं परिहाय समं च रुषा।**

**सुहृदोऽसुहृदः सदृशान् गणयन्, सदयं हृदयं विरचय्य चिरम्॥१०**

इस प्रकार मुनि बाहुबली सभी के लिए पूज्य एवं वन्दनीय हो गये। अतएव महाराज भरत ने भी अपनी अश्रु-प्रवाह से पंकिल मुख-कान्ति से संयम में संलग्न एवं संसार विरक्त बाहुबली को प्रणाम किया -

**पतदश्रुकणाविलवक्त्ररुचिर्भरताधिपतिः समुपेत्य ततः।**

**प्रणनामतरां मतराभसिकानुरतेर्विरतं निरतं विरतौ॥११**

किन्तु बाहुबली के मन से “अहं” पूर्ण रूप से निकला नहीं था। अतः केवल-ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो रही थी। किन्तु कालान्तर में प्रव्रजित ब्राह्मी

और सुन्दरी के प्रबोध से उन्होंने अपने 'अहं' का परित्याग कर अपने पूर्व प्रव्रजित छोटे भाइयों की वन्दना की। क्योंकि जैनधर्म में धर्म-वृद्ध पूज्य होते हैं, आयुवृद्ध नहीं। जैसा कि कालिदास ने भी कुमारसंभव में कहा है

**न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते।**

इस महाकाव्य के नायक भरत भी अपने समस्त परिवार-जनों के प्रव्रजित हो जाने तथा स्वयं के निराभरण हस्त को देखकर बाह्य उपाधियों एवं स्वभाव में होने वाले अन्तर को समझकर विरक्त हो जिन-दीक्षा ले ली और उनके चित्त में उत्पन्न वीतरागी भावनाओं से ही उन्हें केवलज्ञान हो गया। इस प्रकार इस महायुद्ध का अन्त शान्तरस की निर्मल धारा में अपने समस्त कषायों के प्रक्षालन से होता है।

यह महाकाव्य संस्कृत के उच्चकोटि के महाकाव्यों की शैली पर रचा गया है। अतः यहां कवि एक साहित्यकार के रूप में "रामादिवत् वर्तितव्यं न रावणादिवत्" की शिक्षा की भांति यही संदेश देता है कि संसार की यथार्थता को समझकर अपने कर्तव्य की इतिश्री हो जाय तो अध्यात्म-मार्ग का अनुसरण कर चरम पुरुषार्थ "मोक्ष" को प्राप्त करना चाहिए। क्योंकि आत्मा के परम हित का प्रतिपादन ही जैनदर्शन का प्रयोजन है और उसका परम हित मोक्ष-प्राप्ति ही है। यह मोक्ष आत्यन्तिक एवं अव्याबाध सुखस्वरूप होता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक् चारित्र ही मोक्ष-मार्ग में ले जाता है।

जैनधर्म प्राणिमात्र का कल्याण करने वाला है। इस धर्म का स्वरूप अहिंसा, संयम और त्याग का समन्वय है। इस धर्म में क्षमा, मृदुता, सरलता, पवित्रता, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य ये दस नियम या धर्म होते हैं। इस धर्म का क्षमा-गुण बहुत उपयोगी है। हृदय से की गयी क्षमा परस्पर मैत्री-भाव को बढ़ाती है और वैर-भाव का विनाश करती है। राष्ट्रीय भावात्मक एकता का मूलस्वर क्षमा गुण ही है। सच्चा धर्म वैर-विरोध को नहीं सिखाता। वह तो संयम और विवेक से अपने कर्तव्य का बोध कराता है। कर्तव्य-पालन एवं अध्यात्म-निष्ठा ही धर्म है जो इस लोक और परलोक दोनों का कल्याण करने वाला है। इसी भाव को अभिव्यक्त करते हुए कवि ने भरत से कहलवाया है -

**भ्रातस्त्वं लघुरसि तत्तवापराधाः**

**क्षन्तव्या मनसि मया गुरुर्गुरुत्वात्।**

**दाक्षिण्यं तव तु ममारितीव्रमेतन्नो,**

**कर्ता तुहिनरुचेर्यथा तमास्यम्।।<sup>१२</sup>**

अर्थात् हे भाई ! तुम छोटे हो और मैं बड़ा हूँ। इसलिए मुझे अपने गुरुत्व को ध्यान में रखकर मन ही मन तुम्हारे अपराधों को क्षमा कर देना चाहिए। किन्तु यह मेरा तीव्र चक्र तुम्हारे पर कृपा नहीं करेगा, जैसे राहु चन्द्रमा पर नहीं करता। यहां कर्तव्यबोध होने से क्षमा-भाव का उदय तो धर्म है किन्तु अहिंसा भाव के अभाव में यह धर्म निष्क्रिय हो जाता है। अतः भगवान् महावीर ने “अहिंसा परमो धर्मः” का उद्घोष किया था।

ज्येष्ठ भ्राता भरत को युद्ध में मारने के लिए उद्धत बाहुबली को देवताओं ने जो उपदेश दिया वह सभी धर्मों का सार प्रतीत होता है -

**कलहं तमवेहि हलाहलकं, यमिता यमिनोऽप्ययमा नियमात्।**

**भवती जगती जगतीशसुतं, नयते नरकं तदलं कलहैः।।<sup>१३</sup>**

अर्थात् तुम उस कलह को हलाहल विष के समान जानो जिसका आश्रय लेकर संयमी मुनि भी संयम से विचलित हो जाते हैं। कलह के कारण यह पूजनीया पृथ्वी राजपुत्र को नरक में ले जाती है, अतः इस पृथ्वी (राज्य) के लिए किये जाने वाले कलह से हमें सदैव विमुख रहना चाहिए। यही नहीं, देवतागण बाहुबली को शान्तरस के सेवन के लिए मुनि-पद की साधना करने का प्रस्ताव रखते हैं। उनकी सच्ची वाणी को सुनकर बाहुबली तत्काल युद्ध और रोष को एक साथ छोड़कर, मित्र और शत्रु को समान मानते हुए हृदय को सदा के लिए करुणामय बनाकर महाव्रतधारी मुनि बन गये -

**मुनिरे ष बभूव महाव्रतभृत्, समरं परिहाय समं च रुषा।**

**सुहृदोऽसुहृदः सदृशान् गणयन्, सदयं हृदयं विरचय्य चिरम्।।<sup>१४</sup>**

“समणसुत” में मुनि मार्ग को मोक्ष-मार्ग बतलाया गया है। इस मार्ग पर चलकर भव्य जीव इस अनन्त संसार-सागर को पार कर लेता है। इसका आश्रय कोई भी व्यक्ति ले सकता है। वर्ण या जाति का यहां कोई बन्धन नहीं है। जिन अर्थात् जितेन्द्रिय महापुरुषों का वचन ऐसी अमृततुल्य औषधि है जो विषय-वासनाओं का विरेचन कर देती है तथा जरा, मृत्यु एवं रोगों का भी समूलोन्मूलन कर देती है। इस प्रकार सब दुःखों का विनाश कर देने वाली इस जिनवाणी रूपी औषधि का सेवन आध्यात्मिक स्वास्थ्य को प्रदान करने वाला है। यही कारण है कि युयुत्सु भरत और बाहुबली जिनवाणी

के प्रभाव से युद्धोन्माद से विरत होकर केवलज्ञानी हो गये।

इस महाकाव्य में “धर्म” को पुण्य का प्रतीक बताया है जो मानव-मात्र की उन्नति करने वाला होता है। इसके विपरीत अधर्माचरण पापकारक होता है। पापी पाप के कारण अधःपतन की ओर अग्रसर होकर अपना सर्वस्व खो देता है। इसी तथ्य को महाकवि ने प्रकारान्तर से बताया है कि सेना के आगे चलने वाले घोड़ों के खुराग्रों से ऊपर उठती हुई धूल उन घोड़ों के पीछे चलने वाले मदनमत्त हाथियों के मद-जल से वैसे ही नीचे गिरा दी जाती है जैसे भले व्यक्ति पाप के कारण नीचे गिर जाते हैं। पुण्य परोपकार से होता है। पुण्यवान् जीव ऐसी संरचना करते हैं जो दूसरों के लिए प्रेरणादायक होती है। भगवान् का मन्दिर सभी के लिए दर्शनीय एवं वन्दनीय होता है। क्योंकि उसमें ऋषभदेव, पार्श्वनाथ, महावीर आदि तीर्थकरों की प्रतिमाएं होती हैं। उन प्रतिमाओं से अलंकृत जैन-मन्दिर वैसे ही सुशोभित होते हैं जैसे पुण्य के अतिशय से जीवन, आत्मा से देह और कमल से तालाब सुशोभित होते हैं। महाराज भरत भी बाहुबली के राज्य के सीमान्त प्रदेश में स्थित एक मन्दिर को देखकर हाथी से नीचे उतर गये। उन्होंने उत्तरासंगविधि करके अर्थात् स्नान कर एवं साधारण धवलवस्त्र धारण कर मन्दिर में प्रवेश किया और तीन बार भगवान् की प्रदक्षिणा कर पंचांग (दोनों हाथ, दोनों घुटनों तथा मस्तक को जमीन पर रखकर) नमस्कार किया। क्योंकि तीर्थकर को पावन हृदय से नमस्कार करने से चक्रवर्ती राजा भी अन्य राजाओं से नमस्कृत होते हैं। जिनेन्द्र-दर्शन से पाप की वैतरणी सूख जाती है और उसमें पुण्य-सलिल बहने लगता है।

यह संसार-समुद्र तो कषाय रूपी मत्स्यों से भरा हुआ है। वस्तुतः यह काम-वासनाओं के कल्लोलों से अत्यन्त दारुण संसार-सागर तभी पार किया जा सकता है जब जिनेन्द्र-प्रतिमा रूपी नौका उपलब्ध हो।<sup>१५</sup> देव-मन्दिर हमारे देश की संस्कृति के धरोहर हैं। अतः महाकवि ने जैन-मन्दिरों के निर्माण की प्रेरणा दी है।<sup>१६</sup> इस विचित्र संसार में कुछ मनुष्य अप्राप्त भोगों की कामना करते हैं और कुछ प्राप्त सभी भोगों को छोड़कर कैवल्यरूपी वधू का वरण करते हैं।<sup>१७</sup> ऐसे त्यागी-यशस्वी जनों के शान्तरस का सूर्य चित्तवृत्तिरूपी उदयाचल को प्राप्त कर उदित होता है तो वह भव्य जीवों के हृदयरूपी कमलों को विकसित कर देता है।<sup>१८</sup> महाराज भरत भी मन्दिर में स्थित विद्याधर मुनि को देखकर वैराग्य-भाव से भरकर कहते हैं कि हे मुनि! मैं भी आप

द्वारा स्वीकृत मुनि-चर्या को प्राप्त करना चाहता हूँ किन्तु मेरे कर्म-बन्धन शिथिल नहीं हो रहे हैं। बन्धन से बँधा हाथी जैसे दुःख पाता है वैसे ही यह संसारी जीव कर्म-बन्धनों से कष्ट ही भोगता है।<sup>१९</sup> इस संसार में तो जो सुख के कारण हैं, वे ही दुःख के भी कारण हैं और जो राग के हेतु हैं वे ही संताप के भी हेतु हैं। इसी प्रकार जो मैत्री के कारण हैं, वे ही बैर के कारण हैं। अतः इस संसार में शाश्वत सुख कहीं भी नहीं है। जिनके ये सब नहीं हैं वे मुनि धन्य हैं।<sup>२०</sup> मुनिजन तो क्रोधरूपी अग्नि को क्षमा-जल से सर्वथा उपशान्त कर देते हैं। वे अपने मानरूपी हाथी को मार्दव रूपी सिंहनाद से परास्त कर देते हैं तथा मायारूपी वृक्ष का ऋजुता के परशु से उच्छेद कर देते हैं।<sup>२१</sup>

इस महाकाव्य में मुनिधर्म का महत्त्व बताते हुए महाकवि ने कहा है कि वे सर्वदा मन, वचन और काय की प्रवृत्ति में संयत होते हैं। वे तीर्थकरों द्वारा प्रतिपादित मार्ग का साधुवृत्ति से आचरण करते हैं। वे दोनों (बाह्य और आभ्यन्तर) तपस्याओं में लीन रहते हैं। वे आवश्यक क्रियाओं में कभी प्रमाद नहीं करते हैं।<sup>२२</sup> मुनिधर्म ज्ञान, भक्ति और क्रिया का समन्वय है। अतः उनके उपदेश सर्वधर्मसमभाव को लिए हुए होते हैं। उनके उपदेशों से मानव की पाशाविक और स्वार्थमयी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगता है। धर्म की निष्ठा से व्यक्ति का कल्याण होता है और स्वस्थ समाज का निर्माण होता है। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर एक उदात्त वृत्ति होती है जिसे धर्म कहा जा सकता है। इस प्रकार धर्म की अनुभूति होने पर भी प्रवृत्ति नहीं होती है। मुनि अपने प्रवचन से उसी अनुभूति को जीवन में उतारने की प्रेरणा देते हैं। अतः जैन आम्नाय में मुनिधर्म को श्रेष्ठ धर्म माना जाता है। मुनि मोक्ष-सम्पदा के भोक्ता होते हैं।<sup>२३</sup> वे भव्य जीवों के सांसारिक दुःखों को दूर करने वाले होते हैं। क्योंकि उन्होंने सभी प्रकार के द्वन्द्वों से मुक्त होकर जन-जन के अज्ञानान्धकार को दूर करने का प्रयास कर परोपकार की धर्मध्वजा को फहराने का निश्चय किया है। वे ही ज्ञान-सूर्य और ज्ञान-चन्द्र की उपमा को धारण करते हैं। अतः भरत ऐसे महात्माओं की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि हे युगादिदेव ! यह संसार-समुद्र कषायरूपी मत्स्यों से भरा पड़ा है। यह कामवासना की कल्लोलों से अत्यन्त दारुण और दुरुत्तर है। अतः हे देव ! तुम ही नौका बनकर प्राणियों को इससे पार पहुंचा सकते हो।<sup>२४</sup> ऐसे महामुनियों के नाम-स्मरण से भी महान् पुण्यरूपी धर्म होता है। जब उनके साक्षात् दर्शन हो जाते हैं तो अनेक

पुण्यशाली श्रावक महाव्रतधारी मुनि बन जाते हैं। बाहुबली जैसे अद्वितीय योद्धा भी युद्ध-विजय को मानवता की अवहेलना समझकर महाव्रतधारी मुनि हो जाते हैं। उन्हें संयम में संलग्न देखकर चक्रवर्ती भरत भी उनके चरणों में नतमस्तक हो जाते हैं। वे उनसे निवेदन करते हैं कि हे शान्तरस के नायक ! मैं अपराधी हूँ, इसलिए मेरी जीभ कुछ कह नहीं पा रही है। हे सुमते ! ग्रीष्म-ऋतु से तप्त मेरी अभिमत सरिता को आप पानी से भर दें। चक्रवर्ती के इस प्रकार के दीन-वचन सुनकर भी बाहुबली मुनि मौन बने रहे क्योंकि जिन व्यक्तियों का हृदय आसक्ति से रहित है वे राजाओं को भी तृण के समान तुच्छ समझते हैं।<sup>२५</sup>

इस महाकाव्य में भगवान् ऋषभदेव का विस्तृत गुणगान किया गया है। वे प्रथम तीर्थंकर कहलाते हैं। उनके पश्चात् तेईस तीर्थंकर और हुए हैं। उनमें तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ तथा चौबीसवें तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर की ऐतिहासिकता सर्वमान्य है। इनके अतिरिक्त बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ या अरिष्टनेमि को भी विद्वान् ऐतिहासिक मानते हैं। वे श्रीकृष्ण के बड़े भाई थे। जैन-पुराणों में भी इन्हीं चार तीर्थंकरों के विशेष, विस्तृत, प्रामाणिक एवं प्राचीन विवरण प्राप्त होते हैं। इन सभी तीर्थंकरों ने धर्म में अहिंसा, संयम और तप को विशेष महत्त्व दिया है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को श्रमणों के लिए महाव्रत के रूप में आवश्यक माना है तथा श्रावकों के लिए भी इन व्रतों का आंशिक रूप से पालन करना अनिवार्य है। ये ही पांच व्यक्तिभेद से महाव्रत एवं अणुव्रत कहलाते हैं। इन व्रतों का महत्त्व दार्शनिक दृष्टि से भी है। जैनधर्म निरीश्वरवादी है। इस धर्म में सृष्टि के कर्ता, पालनकर्ता और संहर्ता के रूप में ईश्वर की अवधारणा को नहीं माना गया है। यह धर्म तो पुरुषार्थवादी है। श्रमण-संस्कृति में मनुष्य ही अपने पुरुषार्थ के द्वारा ईश्वरत्व को प्राप्त कर सकता है। अतः कोई भी मनुष्य श्रम के द्वारा श्रमण बन कर सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर सकता है। अतः श्रमण-धर्म उदारवादी है। इसमें जैनेतर व्यक्ति भी दीक्षित हो सकता है। सभी जैन तीर्थंकर क्षत्रिय थे। यही इस धर्म की विराटता का प्रबल प्रमाण है। महावीर के अनेक शिष्य ब्राह्मण थे। अतः इस धर्म में जाति-बन्धन नहीं है। आज भी अनेक जैन-मुनि जैनेतर जाति के हैं।

जैन-धर्म में कर्म-मीमांसा प्रमुख है। जो जैसा कर्म करता है वह वैसा फल पाता है। शुभ कर्मों का शुभ परिणाम होता है और अशुभ कर्मों का

अशुभा अतः कर्म की पवित्रता से ही पुण्याश्रव होता है। तभी कोई व्यक्ति सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र (आचरण) से मुक्ति रूप परम पुरुषार्थ को प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार जो मुक्ति की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं वे विशुद्ध ज्ञान से समृद्ध एवं उत्तम चरित्र के धारक हो जाते हैं। ऐसे ही महापुरुषों को अर्हत्, जीवन्मुक्त, सिद्ध या स्थितप्रज्ञ कहते हैं।

जैन-श्रमण मूलतः निर्ग्रन्थ होते हैं। अतः त्याग-प्रधान इस धर्म में अहिंसा को प्रमुख माना है। सभी जीवों पर दयाभाव इस धर्म की प्रमुख विशेषता है। इस धर्म में वनस्पतियों में भी जीव माना गया है। अतः पर्यावरण को भी इस धर्म का प्रमुख अंग माना जा सकता है। सर्वधर्मसमभाव की भावना के कारण ही जैन-दर्शन में अनेकान्तवाद एवं स्याद्वाद की अवधारणा को बल मिला। इस महाकाव्यकार ने दार्शनिक पाण्डित्य को अपने काव्य में स्थान नहीं दिया है।

यद्यपि इस महाकाव्य में अन्य दर्शनों का भी उल्लेख हुआ है किन्तु उनके सिद्धान्तों का खण्डन करना कवि का उद्देश्य नहीं है। जैनदर्शन के मर्मज्ञ महाकवि पुण्यकुशलगणि ने स्याद्वाद-सिद्धान्त के अनुसार अन्य दर्शनों की विशेषताओं का ही प्रकारान्तर से उल्लेख किया है -

**त्वमेव नैयायिकवाक्प्रपञ्चैर्विभुः प्रमेयोऽसि लसत्प्रताप ।**

**त्वमेव भोक्ता शिवसंपदो हि, वेदान्तसिद्धान्तमताभितर्क्य ॥ २९**

अर्थात् महाराज भरत ऋषभ-प्रतिमा की वन्दना करते हुए कहते हैं कि हे तेजस्विन् ! नैयायिक सिद्धान्त के अनुसार तुम-सर्वव्यापी और प्रमेय-प्रमिति के विषय हो। हे वेदान्तसिद्धान्तमत से अभितर्क्य ! तुम ही मोक्ष-सम्पदा के भोक्ता हो।

### **सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

१. त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुगोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्॥

- ऋग्वेद १/२२/१८

२. महाभारत, शान्तिपर्व - १०९/११

३. अथर्ववेद - १२/१/१

४. त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एवेति द्वितीये ब्रह्मचर्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन्।

-छान्दोग्योपनिषद् २/२३

पुण्यकुशलगणि विरचित भरतबाहुबलिमहाकाव्य में जैनधर्म एवं दर्शन: ४९

५. ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न कश्चित् शृणोति मे।  
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते॥ - महाभारत, स्वर्गारोहणपर्व, ५/६२
६. भरतबाहुबलि महाकाव्य १०/२२
७. भ.बा.म. - ३/७
८. भ.बा.म. - २/६८
९. भ. बा. म. १०/५०
१०. भ. बा. म. १०/४७
११. भ. बा. म. १७/७६
१२. भ. बा. म. १७/७९
१३. भ. बा. म. १७/६१
१४. भ. बा. म. १७/७०
१५. भ. बा. म. १७/७६
१६. वही १०/२९
१७. वही १०/४२
१८. वही १०/४७
१९. वही १०/५०
२०. वही, १०/५१
२१. वही १०/५२
२२. वही १०/६३
२३. वही १०/२०
२४. वही १०/२२
२५. वही १७/७९
२६. भ. बा. म. १०/२०



## वैदिक व श्रमण परम्परा में समान धार्मिक क्रियायें

डॉ० मनीषा सिन्हा\*

[ वैदिक एवं श्रमण परम्परा में व्रत, तीर्थयात्रा, दान आदि की जो धार्मिक-क्रियायें पूर्वकाल में प्रचलित थीं वे आज भी प्रचलित हैं। इनमें पापक्षय और पुण्य-लाभ की भावना रहती है। यदि ये वीतरागभाव से की जाती हैं तो मोक्ष-प्राप्ति में सहायक होती हैं। ]

इहलोक तथा परलोक को सुखी बनाने के लिए, पाप-प्रक्षालन तथा पुण्य-प्राप्ति हेतु लोग मुख्यतः तीर्थ, व्रत, दान आदि की धार्मिक क्रियायें सम्पादित करते हैं। तीर्थयात्रा करना एक ऐसा साधन है जो सामान्य जन को स्वार्थमय जीवन के कर्मों से दूर रखने में सहायक होता है। लोगों को उच्चतर एवं दीर्घकालीन नैतिक और आध्यात्मिक जीवन-मूल्यों के विषय में सोचने को मार्ग प्रदान करता है।

आपत्तियों से मुक्ति तथा लौकिक जीवन में शुद्धि-प्राप्ति की आशा में सामान्य जन द्वारा तीर्थ (पवित्र स्थानों) की यात्रा की जाती है।

वैदिक परम्परा में अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काँची, अवन्तिका, द्वारिका को मोक्षदायक तीर्थ माना गया है।<sup>१</sup> अमावस्या, संक्रान्ति, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण पर गंगा-स्नान को असंख्य तीर्थ का फल माना गया है। महाभारत के वनपर्व में तीर्थयात्रा के पुण्य को अग्निष्टोम जैसे यज्ञ से उत्तम बताया गया है। अनुशासन पर्व में तीर्थयात्रा को पूर्ण पुण्य प्राप्त करने वाला कहा गया है।<sup>२</sup> अग्नि पुराण में कहा गया है कि जिससे भोग-मोक्ष की प्राप्ति होती है वह तीर्थ है।<sup>३</sup>

जैन आगम जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति में मागधतीर्थ, वरदामतीर्थ, प्रभासतीर्थ का उल्लेख है। आवश्यक निर्युक्ति में तीर्थ को महत्त्वपूर्ण कहा गया है।<sup>४</sup> तीर्थकर के जन्म, केवलज्ञान, तप और निर्वाण कल्याणकों से सम्बन्धित स्थलों को पवित्र तीर्थ माना गया है।<sup>५</sup>

\* प्रवक्ता- प्राचीन इतिहास, श्री अग्रसेन क. स्वा. पी.जी. कालेज, वाराणसी

बौद्धों में भी तथागत के जन्मस्थान, ज्ञानप्राप्ति, धर्मचक्र प्रवर्तन और निर्वाण इन चार घटनाओं से सम्बन्धित स्थान को पवित्र मान इनकी यात्रा को महत्त्व प्रदान किया गया है।<sup>१०</sup> सुधाभोजन जातक<sup>११</sup> में तीर्थस्थल के रूप में बाहुका, गया, तिम्बरू का उल्लेख है। भूरिदत्त जातक में पाप-प्रक्षालन तीर्थ के रूप में प्रयाग का उल्लेख है। यहाँ का जल पापनाशक के रूप में प्रख्यात था।<sup>१२</sup>

धार्मिक क्रिया का दूसरा मुख्य अंग व्रत है। वैदिक एवं श्रमण दोनों परम्पराओं में अनिष्टकारी शक्ति से व्रत किया जाता है। व्रत धार्मिक संकल्प के रूप में ग्राह्य है अर्थात् किसी तिथि, सप्ताह, दिन या मास में एक मानसिक प्रतिज्ञा की जाती है जिसमें व्यक्ति को भोजन-सम्बन्धी या आचरण सम्बन्धी कुछ निषेधों का पालन करना पड़ता है।

वैदिक संहिता में आचरण से सम्बन्धित नैतिक-विधियों के अर्थ में व्रत आया है।<sup>१०</sup> पूर्णमासी के उपरान्त आठवें दिन अष्टमी को व्रत तिथि कहा गया है।<sup>११</sup> आपस्तम्ब धर्मसूत्र में उल्लेख है कि अमावस्या की रात्रि में चन्द्र, सूर्य के साथ रहता है इसलिए इसे दर्श भी कहा गया है। अग्निपुराण में व्रत के दस गुणों का वर्णन किया गया है।<sup>१२</sup> पुराणों में उल्लेख है कि कामदेव, यक्ष, शिव के लिए क्रमशः त्रयोदश, चतुर्दशी, पूर्णिमा के दिन व्रत सम्पादन होता था।<sup>१३</sup> एकादशी व्रत की मान्यता सर्वाधिक है और इस सम्बन्ध में प्रचलित है कि एकादशी व्रत से उत्पन्न अग्नि से सहस्रों जीवन में किये गये पापों का इंधन जलकर भस्म हो जाता है। अश्वमेध एवं वाजपेय जैसे सहस्रों यज्ञ एकादशी व्रत के सोलहवें अंश तक भी नहीं पहुँच सकते। एकादशी स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदायक है। एकादशी की रात्रि से कार्तिक शुक्ल एकादशी तक चातुर्मास्य व्रत की स्थापना की जाती है। इस समय व्रती को शय्या, शयन, मांस, मधु आदि का त्याग करना पड़ता है।

जैन साहित्य में पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी को उपवास का दिन बताया गया है। व्रत को पोषधोपवास या पोसहसाल कहा गया है।<sup>१४</sup> उपासकाध्ययन में कहा गया है कि व्रत के दिन विशेष पूजा करके व्रत का आचरण कर धर्म कर्म को बढ़ाना चाहिए। इसके पूर्व के दिनों में रस का त्याग, एकाशन या उपवास, एकान्त-निवास, करना चाहिए।<sup>१५</sup> लोग अपने आध्यात्मिक विकास के लिए प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी पूर्णमासी के दिन उपवास करते थे एवं संध्या को पौषध ग्रहण करते थे। मज्झिमनिकाय,<sup>१६</sup> अंगुत्तरनिकाय<sup>१७</sup>

संयुक्तनिकाय<sup>१०</sup> थैरीगाथा<sup>११</sup> से विदित है कि अनिष्टकारी शक्ति एवं प्रभाव से बचने के लिए विभिन्न प्रकार के मनोकामना पूर्ति के लिए सामान्य जन प्रायः चतुर्थी, पंचदशी, अष्टमी तथा नवमी व्रत का पालन करते थे। चातुर्मास व्रत को वर्षावास कहा गया है। वृहत्कल्पभाष्य में वर्षावास का परम प्रमाण चार माह गया है।<sup>१२</sup> स्थानांग सूत्र<sup>१३</sup> तथा विनयपिटक<sup>१४</sup> में चातुर्मास्य व्रत के रूप में वर्षावास का उल्लेख है।

धार्मिक क्रिया का तीसरा महत्वपूर्ण अंग दान है। ऋग्वेद में दान को अति श्रेष्ठ माना गया है। इसमें नीति है कि दानदाता के पाप को इन्द्र नष्ट कर देते हैं।<sup>१५</sup> दानकर्ता के लिए कहा गया है कि वह स्वर्ग में उच्च स्थान प्राप्त करता है। अश्व-दान करने वाला सूर्यलोक में निवास करता है। स्वर्ण का दानी देवता का पद प्राप्त करता है। परिधान का दान करने वाला दीर्घ जीवन का लाभ करता है। सप्तम मण्डल में अश्वदान, गायदान, रथदान का उल्लेख है।<sup>१६</sup> पंचम मण्डल में रक्तदान का उल्लेख है।<sup>१७</sup> चतुर्थ मण्डल में गोदान करने वाले का दान प्रशंसनीय कहा गया है।<sup>१८</sup> छान्दोग्य उपनिषद् में आया है कि जनश्रुति पौत्रायण ने स्थान-स्थान पर ऐसी भोजनशालाएँ बनवा रखी थी जहाँ पर सभी दिशाओं से आकर लोग भोजन प्राप्त कर सकते थे।<sup>१९</sup> महाभारत के अनुशासन पर्व में भूमिदान, वशिष्ठ-धर्मसूत्र, मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति में विद्यादान, विष्णु धर्मसूत्र में अभयदान को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है।<sup>२०</sup>

जैनों के सूत्रकृतांग में अभयदान को श्रेष्ठ कहा गया है।<sup>२१</sup> जैन आगम में दान के लिए मुद्यादायी और मुद्याजीवी शब्द का उल्लेख किया गया है। दान वही श्रेष्ठ है जिसमें दाता का कल्याण हो और गृहीता का भी कल्याण हो।<sup>२२</sup> आचारांग सूत्र में उल्लेख है कि तीर्थकर दीक्षा लेने के पहले वर्षादान करते हैं। स्थानांग सूत्र में दान को श्रेष्ठ धर्म कहा गया है।<sup>२३</sup> स्थानांग सूत्र तथा आवश्यकचूर्णि में दान के दस प्रकारों का भी उल्लेख है।

आवश्यक सूत्र, उपासकदशांग, सूत्रकृतांग एवं भगवतीसूत्र में दान के उत्तम प्रकारों का उल्लेख है। इनमें शासन, दान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादपोछन, पीठफलक, शय्या, संस्तारक, औषध और भैषज्य-दान को श्रेष्ठ फलदायी कहा गया है।<sup>२४</sup>

बौद्ध साहित्य में भी दान-क्रिया की निरन्तरता जारी है और दिव्य बल, आयु<sup>२५</sup> ब्रह्मलोक की प्राप्ति<sup>२६</sup>, सर्वज्ञता की प्राप्ति<sup>२७</sup>, देवत्व की प्राप्ति<sup>२८</sup>,

पुत्र प्राप्ति<sup>११</sup>, पुण्य एवं स्वर्ग-प्राप्ति<sup>१२</sup> के लिए दान दिये जाने का उल्लेख है। संयुक्त निकाय<sup>१३</sup> में दानी द्वारा श्रमणों, ब्राह्मणों को भोजन, वस्त्र, गन्ध आदि अनेक वस्तुएँ दान में देने का उल्लेख है। जातकों से विदित होता है कि दानपतियों द्वारा अपने अपने नगर में प्रायः छह-छह दानशालाओं के निर्माण की प्रथा प्रचलित थी।<sup>१४</sup> दुहद जातक में सामूहिक दान का उल्लेख है।<sup>१५</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक और श्रमण परम्परा में अनेक धार्मिक क्रियाएँ समान थीं। यदि इन धार्मिक क्रियाओं को वीतरागभाव से किया जाता है तो ये परम्परया मोक्ष-लाभ में सहायक होती हैं।

### सन्दर्भ-सूची

१. काणे, पी.वी.- धर्मशास्त्र का इतिहास, तृतीय भाग, पृ. १३७१
२. वही पृ. १३००
३. अग्निपुराण, अध्याय १०१, पृ. २३५ गीता प्रेस, द्वितीय संस्करण
४. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ३/५७ हिन्दी अनु. मधुकर मुनि
५. आवश्यक निर्युक्ति पृ. २८४
६. वही
७. सांकृत्यायन, राहुल- बुद्धचर्या, पृ. ५००
८. जातक, ५, पृ. ४७१-७२
९. जातक, ६, पृ. २३४
१०. काणे, पी. वी.- धर्मशास्त्र का इतिहास, हिन्दी अनु.- चतुर्थ भाग, पृ. ८,
११. वही, पृ. २६
१२. वही पृ. २८
१३. वही पृ. ४२
१४. वही
१५. उपासकदशांग- सूत्र, अभयदेव टीका, पृ. ४५
१६. उपासकाध्ययन ७/८/१९
१७. कोठारी, सुभाष- उपासकदशांग और उसका श्रावकाचार एक परिशीलन, पृ. १८२
१८. मज्झिम निकाय, हिन्दी अनुवाद- राहुल सांकृत्यायन, पृ. १६६
१९. अंगुत्तर निकाय, भाग एक, हिन्दी अनुवाद- भदन्त आनन्द कौसल्यायन, पृ. १४७
२०. संयुक्त निकाय, भाग एक, हिन्दी अनु. जगदीश काश्यप, धर्मरक्षित, पृ. १८१

५४ : श्रमण, वर्ष ६१, अंक ४ / अक्टूबर-दिसम्बर-१०

२१. थेरीगाथा, हिन्दी अनु. भरत सिंह उपाध्याय, पृ. १३
२२. वृहत्कल्पभाष्य १/६/७/८
२३. स्थानांग सूत्र, हिन्दी अनु. मधुकर मुनि, पृ. २८२-८३
२४. विनयपिटक, हिन्दी अनु. राहुल सांकृत्यायन पृ. १७
२५. ऋग्वेद, चतुर्थ मण्डल, सूक्त २० पृ. ३६
२६. काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इति. हिन्दी अनु., पृ. ४४७
२७. सप्तम मण्डल, सूक्त १८
२८. पंचम मण्डल-सूक्त ८
२९. चतुर्थ मण्डल सूक्त १
३०. काणे, पी. वी.- धर्मशास्त्र का इतिहास, हिन्दी अनुवाद, पृ. ४४८
३१. वही
३२. सूत्रकृतांग, हिन्दी अनुवाद, मधुकर मुनि- पृ. ३२५
३३. मुनि पुष्कर- जैन धर्म में दान एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ. ३१४
३४. आचारांग सूत्र, हिन्दी अनुवाद मधुकर मुनि, पृ. ३७९
३५. स्थानांग सूत्र, हिन्दी अनुवाद, मधुकर मुनि, भाग एक, पृ. ७१९
३६. मुनि पुष्कर- जैन धर्म में दान एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ. ३६३
३७. महावग्ग, ६४४ पृ. २३६
३८. अरक जातक, २, पृ. १६९
३९. विसच्छ जातक, ३, पृ. २९२
४०. बिलारकेसिय जातक ४, पृ. २६४-६५
४१. महावेस्सन्तर जातक, ६, पृ.
४२. अंगुत्तर निकाय, हिन्दी अनुवाद भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भाग-२, पृ. २७७-७९
४३. संयुक्त निकाय, हिन्दी अनुवाद- जगदीश काश्यप, धर्मरक्षित, भाग १, पृ. २०
४४. बिलारकेसिय जातक, ४, पृ. २६४, शंखपाल जातक, ५, पृ. २५२
४५. दुहद जातक, २, पृ. २६२-६३

\*

## REPRESENTATION OF NATURE IN JAINA ART AND TRADITION (with special reference to Khajurāho)

Dr. Shanti Swaroop Sinha

---

*Jaina Art and Architecture depicts the close association of Jaina Ācāryas and Tirthaṅkaras with nature. If we look at the images of twenty-four Tirthaṅkaras, all the images are found necessarily imbued with the figure of either any tree or any animal based on the cognizance of that particular Tirthaṅkara. It shows the concern of the great exponents of Jainism towards nature as well as their close relationship with environment. The author of the article has beautifully described this theme with the help of several examples from Jaina Art and Architecture.*

Since man appeared, there have been two kinds of things on earth -objects of nature and objects of art. Objects of nature existed even before Men came. Human art is in fact an utterance of man's understanding of Nature. The best gift of god to man is nature. The cosmic phenomena of Nature are represented everywhere in human art as an integrated expression and also in the backdrop. The present paper deals with "*Representation of Nature in Jaina Art and Tradition with special reference to Khajurāho*".

Jainism being the religion of deep faith in *Ahiṃsā* (non-violence) and principle of life in the vegetation world had sustained nature as the benevolent protector of humanity. The Jaina texts frequently speak of the prohibitions towards making injury to world of flora and fauna. To impart this message of essentiality of flora and fauna for the survival of the human life, the Jaina texts

---

\* Assistant Professor, Department of Visual Arts, BHU

wonderfully visualized their main deities- the 24 Jinas or Tīrthaṅkaras in the midst of the nature. Each of the 24 Jinas has been provided with an identifying cognizance (fig. 01), which in case of 15 Jinas are either some animals (including aquatic ones) or some birds. In two examples of Padmaprabha and Naminātha they are red or blue lotus. One very interesting point of respectful association of flora and fauna with the Jinas is that contrary to the deities of Brahmanical and Buddhist (except Buddha) cult they never ride upon their mounts (animals or birds) simply because that act would also amount to violence against them. Those are shown only as identifying emblems on the pedestal. Further every Jina in course of his *Tapas* (meditation) attains absolute knowledge (*Kevala Jñāna*) invariably under some tree like *Aśoka*, *Śāla*, *Pīpala*, *Vaṭa*, *Āmra* etc. Thus the Jaina tradition has beautifully and intelligently underline perennial importance of flora and fauna by way of showing them in intimate association with all the 24 Jinas, highest in Jaina worship. This association is also shown in tabular form.

**FLORA & FAUNA ASSOCIATED WITH  
TĪRTHAṅKARAS AS THEIR COGNIZANCES AND  
KEVALA TREE**

Sl. No.	Tīrthaṅkara	Cognizance	Kevala Jñāna Tree
1.	Rṣabhanātha	Bull	<i>Aśoka</i> tree (Jhonesia Ashoka)
2.	Ajitanātha	Elephant	<i>Saptaparṇa</i> tree (Alstoma Scholaris)
3.	Sambhavanātha	Horse	<i>Śāla</i> tree (Shorea Robusta)
4.	Abhinandana	Monkey	<i>Piyaka</i> or <i>Piyālā</i> tree (Sarala)
5.	Sumatinātha	Goose	<i>Priyāngu</i> tree (Panicum Italicum)

6.	Padmaprabha	Red Lotus	Banyan tree
7.	Supārśvanātha	Svastika	Śirisa tree (Acacia Sirīsa)
8.	Candraprabha	Crescent	Nāga tree (Punnaga)
9.	Puṣpadanta	Crocodile	Malura tree
10.	Śītanātha	Śrīvatsa	Pippala tree (Ficus Religiosa)
11.	Śreyaṁsanātha	Rhinoceros	Aśoka tree (Jhonesia Ashoka)
12.	Vāsupūjya	Buffalo	Pātala tree (Big nonia Suaveolens)
13.	Vimalanātha	Boar	Jambū tree (Eugenia Jambolana)
14.	Anantanātha	Falcon	Aśvattha tree (Ficus Religiosa)
15.	Dharmanātha	Thunderbolt	Dadhiparṇa tree (Clitorea Ternatea)
16.	Śāntinātha	Tortoise	Narīdi tree (Cedrela Toona)
17.	Kunthunātha	Goat	Tilaka tree
18.	Aranātha	Nandyāvarta	Mango tree
19.	Mallinātha or Mallivāmī (as female in Śvetāmbara tradition)	Water pot	Aśoka tree (Jhonesia Ashoka)
20.	Munisuvrata	Tortoise	Champā tree (Michelia hampaka)
21.	Naminātha	Blue Lotus	Bakula tree

22.	Neminātha or Ariṣṭanemi	Conch	(Misnusops Elengi) Vetasa tree (Reed or Bamboo)
23.	Pārśvanātha	Snake	Dhātikī tree (Grislea Tomentosa)
24.	Mahāvīra	Lion	Śāla tree (Shorea Robusta)

The importance of flora and fauna is further extended when we find that all the 24 *Yakṣas* and *Yakṣis* (Śāsanadevatās) associated with the Jinas are provided with *Vāhanas* (conveyances) which are mainly some animals, birds or reptiles and flowers (shown animal, bird wise in tabular form). Further the *Yakṣas* like- Gomedha, Brahmā ; *Yakṣis* like- Kālikā, Aśokā, Chandā, Vinītā, Aṅkuśā, Nirvāṇī, Dhāriṇī, Vairoṭyā, Padmāvātī and *Mahāvīdyās* like Rohiṇī, Vajraśṛṅkhalā, Kālikā, Gāndhārī, Mānavī are shown as carrying lotuses in one of their hands.

### ASSOCIATION OF NATURE WITH ŚĀSANADEVATĀS & MAHĀVIDYĀS

Animal, Bird and	<i>Yakṣa</i>	<i>Yakṣi</i>	<i>Mahāvīdyā</i>
<b>Aquatics</b> <b>Vāhanas</b>			
Bull	Gomukha (face), Īśvara, Yakṣendra, Varuṇa, Bhṛkuṭi	Śāntā, Sutarā	.....
Cow	.....	Rohiṇī	Rohiṇī
Elephant	Gomukha (mount), Mahāyakṣa,	Mahākālī, Śānta, Śānta, Siddhāyikā	Vajraśṛṅkhalā, Vajraṅkuśa

Horse	Mātaṅga, Garuḍa, Kubera, Kusumā	Acyutā, Chandā	Prajāpati, Acyutā
Lion	Mātaṅga, Gandharva, Kubera	Mahākālī, Mānavī, Dhariṇī, Naradattā, Ambikā, Siddhāyikā	Vairoṭī, Mahāmānasī
Buffalo	.....	Duritāri, Bhrikuṭī, Nirvāṇī, Bālā, Padmāvati	Naradattā, Jvālamālinī
Snake	Timukha, Yakṣendra	Aśokā, Vinītā, Naradattā	Vairoṭī
Boar	Garuḍa	Bhrikuṭī, Aśokā, Bālā	Jvālamālinī
Deer	Kusumā	Mānavī	Kālikā
Monkey	.....	Gāndhārī	.....
Tiger	.....	Kandarpā	.....
Peacock / cock	Trimukha, Kusuma Kumārā Saṅmukha	Duritāri, Bhrikuṭī, Nirvāṇī, Bālā, Padmāvati	Prajāpti
Eagle	Tumbarū,	Cakreśvari,	Apraticakrā

	Kumāra	Nirvāṇī	
Swan	Yakṣeśvara, Vijaya, Gandharva	Kālikā, Bhrikūṭī, Aṅkuṣā, Gāndhārī	Mānasī, Mahāmānasī
Pigeon	Vijaya	.....	.....
Fish	Kinnara	Kandarpā	.....
Tortoise	Ajita, Dharaṇendra	Sutarā	Gāndhārī
Crocodile	Pātāla, Kinnara	Caṇḍā, Gāndhārī	.....

Another point of interest in Jaina context is the *Samavasaraṇa*, (big congregation hall built by Indra) having three fortification walls, at the top of which sits every Jina after attaining omniscience to deliver first sermon. What is specially important in this context, as mentioned in Jaina texts like- *Ādipurāṇa* of Jinasena (early 9<sup>th</sup> century), *Harivaṃśa Purāṇa* of Jinasena (783 AD), *Trīṣaṣṭīśalākāpuruṣacaritra* of Hemacandra (12<sup>th</sup> century), is that for listening to the maiden preachings of the Jinas, the animals with inherent enmity also became friendly and came together and sat face to face. Accordingly we find in sculptural examples of *Samavasaraṇa* from Kumbhariya, Delvada, Ranakpur and other places that such snake-peacock, elephant-tiger, tiger-deer like animals are shown sitting face to face. Thus tradition of *Samavasaraṇa* also presents not only world of animals alongwith human world but also show the impact of the preaching's of the non-violence of Jinas on animals.

Another dimension of the representation of nature in Jaina tradition and art is Auspicious Dreams (*Māṅgalika Svapna*), which are 14 according to Śvetāmbara texts and 16 according to Digambara texts. These auspicious dreams (fig. 02) were seen by respective mothers of 24 Jinas before their births. The attached table of auspicious dreams distinctly show that the list has three

four- legged powerful animals namely Bull (symbol of *Dharma* or religion, agriculture, procreation, strength and power), Elephant (symbol of majesty, dignity, strength and prosperity and hold unique distinction in the Indian religion, mythology and art) and Lion (king of animals, suggestive of strength, and royalty). Besides, *Puṣpahāra* (flower garland) and four main primeval elements of Nature- Sun, Moon, Fire and Water are also mentioned in the list of auspicious dreams. The mention of *Nāgendra Bhavana* reminds of snake worship, which is also associated with seventh Jina Supārśvanātha and 23<sup>rd</sup> Jina Pārśvanātha . The representation of auspicious dreams in the miniature paintings of *Kalpasūtra* and sculptural renderings from Kumbhariya, Ranakpur, Khajuraho (fig. 03) temples mainly on their doorway above lintel are worthy of mention.

Now we shall make a brief study of the representation of the nature in Jaina Art of Khajuraho. Khajuraho (Chatarpur, MP) being a very prolific temple site of Chandella period, has yielded more than 25 surviving temples. The discussion concerns only Jaina temples. Presently there are four surviving Jaina temples at Khajuraho namely Pārśvanātha temple (actually dedicated to Jina Ādinātha, c.950 - 70 A.D.), Ghantai (dedicated to Ādinātha) temple, c. 950 A.D. (now broken and only its porch is surviving), Śāntinātha temple (A.D. 1028) and Ādinātha temple (11<sup>th</sup> century A.D.). Besides a number of other Jaina temples were also built, the fragmentary remains of which are found mainly in the forms of door-way, wall portion and images sometimes reused in modern construction of Jaina temples. The remains are found in the three local museums of Khajuraho also.

Pārśvanātha Jaina temple of Khajuraho (fig. 04) is the best preserved and indeed one of the finest temples of Khajuraho. The harmonious integration of sculpture and architecture infuse life in inanimate stone and the temple becomes melody in stone. The Pārśvanātha Jaina temple was constructed by Pāhila who was

“honoured by the king Dhaṅga”, the son and successor of Yaśovarmana. The inscription in the Pārśvanātha temple bear the date, in *Vikrama* year 1011 (A.D. 954). The mention about donation of seven *Vātikās* (gardens) in the names of Pāhil, Dhaṅga, Chandra, Laghechandra, Śaṅkara, Pañcāyatana and Āmra in the inscription is significant. Apparently the gardens could be the source of maintenance of big temple like Pārśvanātha. The projections and recesses of façade (fig. 06) of outer and inner circumambulation carry three elegant bands of sculptures, which show figures of Jinas, Ambikā *Yakṣī*, Bāhubali (fig.07), Aṣṭadīpālas, Brahmanical deities (Śiva, Viṣṇu, Brahmā, Kāmadeva) and *Sura-sundarīs* (nymphs). Barring the figures of Jinas with cognizances and the *Yakṣīs* like Cakreśvarī and Ambikā with *Vāhanas* (mount), the door-jamb (fig. 05) also show the floral decorations. The figures of two main river goddesses Gaṅgā and Yamunā with their *Vāhanas*- Makara (crocodile) and *Kūrma* (tortoise) represent Jala-Devis and thus primeval element of Nature -water.

The other temple- Ghantai, dedicated apparently to first Jina Rṣabhanātha, survive only with its porch having floral and other decorations. This temple of 10<sup>th</sup> century alongwith 11<sup>th</sup> century Ādinātha temple are important from the standpoint of the renderings of 16 auspicious dreams which consist of Bull, Elephant, Lion like animal and lotus and elements of nature - Water (ponds - *sarovara*, ocean), Sun and Moon. Ādinātha temple is also important for the beautiful damsel figures shown in close association with nature- tree. The figures of *Mahāvīdyās* and *Yakṣīs* like Cakreśvarī, Padmāvatī, Ambikā are shown with the mounts, which are either four-legged animals or some birds.

The Jaina temples are identical in architectural schema with the Brahmanical temples of Khajuraho, which invariably show the *ghaṭa*, flowers, creepers and animals in the intervening space of the figures all along the temples and also on their basement. The

Pārśvanātha temple is specially rich so far as the figures of *Vyālas* (leogryphs) are concerned. Although *Vyālas* are mythical animal but they look like a powerful lion to suggest the royal power of the rulers. These *Vyālas* mostly having the face of a lion (grotesque) sometimes have the faces of an elephant or a parrot or a horse and also of human being. Under the feet of the roaring *Vyālas* figures of warriors are shown, who hold sword and rides a horse. They are in the attitude of fighting the *Vyālas*. These representations are forceful.

Of the 24 Jinas, 13 are represented at Khajuraho, the most important being Ṛṣabhanātha, Pārśvanātha and Mahāvīra. They are invariably shown respectively with bull, snake (as seven hooded snake canopy) and lion. While the Jinas are shown with *lāñchana*, a good number of Brahmanical deities on Khajuraho Jaina temple make an important point of study in respect of harmony revealed through Jaina temples at Khajurāho. The deity like Kāmadeva is shown with *Pañchaśara* (five arrows made of flowers) and *Ikṣudhanu* (bow of sugarcane). The figures of *Yakṣīs* like Cakreśvarī on the doorways and outer wall or *adhishthāna* of Jaina temples, shown with *garuḍa* (eagle) *vāhana* and Ambikā with *āmralumbī* (bunch of mangoes) in hands and shade of mango tree above the head alongwith lion mount are also noteworthy. Another popular *Yakṣī* Padmāvati, is the snake goddess, holding snakes in hands and having snake canopy.

Khajuraho sculptures as pointed out by my teacher Prof. Maruti Nandan Tiwari, reveal that the artists / patrons had special fascination for lotus flower which has been shown in the hands of all the deities irrespective of the fact whether or not lotus was to be shown with them. The variety of the lotus rendering is also tremendous.

Another interesting representation is to be seen in the forms of the *Apasarās* or beautiful damsel figures, which look to be the combination of heavenly and earthly beauty. The tree foliage is

invariably associated with them as an umbrella or canopy. Sometimes the appearance of monkey or scorpion somewhere on their legs or thigh has deep suggestion of the pangs of love and exposure of beauty through fear. Apparently the use of the flora and fauna in the figures of damsels also gives meaning in expressing the feminine beauty.

Thus the Jaina temples of Khajuraho are the examples whereon the beauty, spirituality and devotion are created by putting the divine and human figures in close association with the nature.

### References :-

1. M.N.P.Tiwari- *Jaina Pratimāvijñāna*, Varanasi, 1981; *Elements of Jaina Iconography*, Varanasi, 1983; *Kajurāho Kā Jaina Purātatva*, Khajuraho, 1987.
2. K.K. Chakravarty, M.N.P. Tiwari & Kamal Giri (eds.)- *Khajurāho In Perspective*, M.P. 1994.
3. M.N.P. Tiwari & S.S. Sinha- *Jaina Kalā Tīrtha Deogarh*, Deogarh, 2002.
4. M.N.P. Tiwari & S.S. Sinha- *Jaina art and Aesthetics*, New Delhi, 2010.
5. U.P.Shah- *Jaina Rūpa Mañdana*, Varanasi

### List of Illustrations

1. Line-drawing, Cognizances of 24 Jinas, imbibing world of Nature.
2. Line-drawing, Auspicious Dream showing fusion of Flora & Fauna.
3. Auspicious Dreams, Door-Lintel, Śāntinātha temple complex, Khajuraho (Chatarpur, M.P.), 11<sup>th</sup> century A.D.
4. Pārśvanātha Jaina temple, Khajuraho, c. 954 A.D.
5. Door Frame, Porch, Pārśvanātha Jaina temple, Khajuraho, c. 954 A.D.
6. Divinities with Flora & Fauna, south wall, Pārśvanātha Jaina temple, Khajuraho, c. 954 A.D.
7. Bāhubali, inner south wall of *Garbhagrha*, Pārśvanātha Jaina temple, Khajuraho, c. 954 A.D.

## JAINA ETHICS AND ITS REFLECTIONS ON SOCIETY

*Prof. (Smt.) Rekha Chaturvedi*

*Being an ascetic religion Jainism has been blamed by some of the scholars that it is not for society. But this is not true. Though it belongs to Nivṛttimārgī tradition and talks of renunciation but it is very much for the society. Being reconciliatory in its attitude, Jaina Ethics gives us a bundle of commandments by applying which one can make one's life as well as society healthy and virtuous. It does not talk of renunciation of world but it talks of renunciation of attachment and aversion and supra moral plan of life in the society. The author has recorded here some of the reflections of Jainism on Society.*

Wealth, health, beautiful persons, good food, clothing and houses are some of the objects, which an average man generally likes to have. On the contrary poverty, ill health, ugly faces, starvation and ill-feeding are the objects which a person tries to escape from. The desired object causes happiness and undesired causes misery. Pleasure and pain are the two sides of a coin.

According to Jaina Ethics, our worldly possessions do not make us necessarily and fully happy.<sup>1</sup> Nor are poor people always unhappy. Happiness mainly depends on our mental attitude.<sup>2</sup> The state of mental poise and calmness which springs forth from self-control and integrity of personality can not be bought for money. There is a happiness, which reveals from within and that is called 'bliss' or 'beatitude'. The aim of worldly happiness is called 'Preyas' and the end of spiritual bliss is called 'Śreyas' respec-

\* Deptt. of Ancient History, D.D.U. University, Gorakhpur

tively.

The main concern of Jaina Ethics is 'Śreyas' and not 'Preyas'. It aims at spiritual upliftment of the individual rather than his worldly success. It prescribes a supra-moral plan of life.<sup>3</sup> Where one transcends both good and bad. Here Jaina point of view is nearer to *Bhagvadgītā*'s transcendental state of mind (*Sthitiprajñatā*). Any extrovert activity, whether vicious or virtuous is a deviation from the path of liberation.

Ācārya Kundakunda says that vice and virtue are shackles of iron and gold both of which bind us to the physical world<sup>4</sup>. The ideal of Jaina Ethics is the state of self-absorption with inner awakening. The supra Ethical plane of life can be realised only by persons with higher spiritual attainments who have dived deep into the realm of life.

Every body should aspire for this ideal but with consideration to one's limitations. In the initial stage the aspirant is required to be vigilant so that he may not go astray. Pūjyapāda says that virtuous life is definitely to be preferred to licentiousness. It is better to wait if we have to wait at all in the cool shade rather than in the hot sun<sup>5</sup>.

In the Vedic period, the *Rṣis* seem to be anxious for long life, progeny, wealth and fame. In the Upaniṣadic age the pressure of the problem of misery was acutely felt.

Nārada who had mastered all branches of knowledge including Vedas could not find the way to get rid of misery. As referred in *Chāndogyaopaniṣad* he approached Sanat Kumāra in all humbleness and told him that though he had heard that a man with self realisation crossed miseries, he himself was not capable of overcoming them 'O' Lord, I am 'in grief' lead me to the shore that lies beyond grief."<sup>6</sup>

The credit of dealing with misery goes to Lord Buddha. He systematically expounded an elaborate ethical system for removal

of sorrow. The universality of misery according to him was birth, old age, decay, sickness, death, sorrow, grief, woe, lamentation and despair and not to get desired. Buddha perceived the existence of misery but he prescribed a way of redemption from it. He suggested four noble truths that:<sup>7</sup>

- i) Misery exists (सर्वदुःखता)
- ii) It has a casual chain (दुःखसमुदय )
- iii) It can be stopped (दुःखनिरोध) and
- iv) There is way to get rid of it. (दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा)

There is a view that there are tangible means of getting rid of misery e.g. diseases can be cured by medicines and therefore one need not worry about ethics. But from another point of view there are objections to it.

- i) Firstly, it is not sure that a particular misery can be cured by a tangible means without fail.
- ii) Secondly, a medicine may or may not cure the disease.
- iii) Thirdly, the relief is only temporary.

Therefore, one can not depend on tangible means<sup>8</sup>. The root cause of the miseries has to be found and a check imposed so as to uproot miseries permanently and unfailingly. The necessity of a moral discipline is a must.

In the Jaina view Ācārya Śīlānka gives his commentary in the beginning of *Ācārāṅga-sūtra* 'all creatures, over come by attachment, aversion and delusion tormented by various excessively bitter, physical and mental miseries should try to know that is good and what is bad for the removal of misery.'<sup>9</sup>

*Uttarādhyayana* says that all worldly pleasure is suffering in the ultimate analysis.

"All singing is but prattle, all dancing is but mocking, all ornaments are but a burden, all pleasure produce but pain."<sup>10</sup> Jaina thinkers gave a formula that; *Āśrava* (inflow of karmic matter causing misery) is the cause of birth and rebirth while *Samvara*

(stoppage of that inflow) is the cause of liberation. The soul engulfed in the mud of karmic matter from times immemorial, after getting rid of it, shines forth in its intrinsic purity of infinite knowledge, intuition, bliss and potency.

The foundation principle of ethics is 'As you sow, so shall you reap, but Jaina relates it with a Psychological attitude of habit and says, 'we sow a character and reap our fate'. Human efforts and freedom of will have their own part to play in altering, amending, aggravating or affecting our past deeds and determining our future.<sup>11</sup>

The virtues lead to happiness and are to be preferred to vices, but the ultimate aim of morality is a state beyond vice and virtue. Such perfection is a far cry for an ordinary man as he has normal duties to discharge. For his help a code of conduct is prescribed and the code is only a path not the end. For perfection a considered balance is required between practical code of conduct and a supra moral plane of life.

The meritorious action leads to wealth, wealth to pride, pride to infatuation and infatuation to sin; but from practical point of view good actions have to be preferred to bad action for the following reason.

- i) For a common man happiness is naturally preferable to misery<sup>12</sup>.
- ii) Good activities result in negation of passions.<sup>13</sup>
- iii) Good acts promote the interest of society are preferable to bad ones which are cause its disintegration.

Jaina ācāryas ask their adherents to follow those general customs of the society, which are not contrary to spiritual teachings.<sup>14</sup>

Jainism is reconciliatory in its attitude<sup>15</sup>. Right faith, right knowledge and right conduct are the compact exclusive formula

for liberation.<sup>16</sup>

On the other hand, some systems of Indian philosophy like Sāṅkhya and Vedānta hold knowledge (*tattvajñāna*) to be the means of liberation. Mimāṃsā holds *karman* (right action) to be superior to any thing. *Bhakti*-cult holds devotion and faith to be the only way. Jainism shares its attitude with other systems of Indian philosophy.

Right faith is an outcome of right attitude. It has a dynamic quality. Jainism does not accept the supremacy of a particular person like other world religions.

Jainism approves the direct comprehension of truth as a landmark in the life of an aspirant. Right conduct and Right knowledge is impotent without Right faith. The union of the three brings real bliss to the soul. Jaina right believer is a *Niṣkāma-karmayogī* of *Bhagvadgītā*.

Jainism places ethics above metaphysics. Knowledge acquired through direct spiritual experience leads to liberation.

### **Reflections and influence of Jaina ethics on society**

The Vedic people were more inclined towards worldly engagements than spiritual attainments in the first phase. They glorified the institutions of war as means of destroying enemies '*vaidikī himsā himsā na bhavati*' was a slogan and at the time of Mahāvīra, animals were killed mercilessly in sacrifices but *Manusmṛti* praises avoidance of meat eating under Śramṇic influence. *Mahābhārata* declared non-violence as supreme duty<sup>17</sup>. Thus, the central principal of Jainism becomes important principle of Hinduism.

It is a real truth in the saying that life lives on life.<sup>18</sup> Still justice demands that we should not inflict misery on others-to inflict on us. This golden rule is adopted in the *Bible* also.

The five vows, the three-fold path of self-discipline and the

five-fold path of vigilance are the constituents of practical conduct.

The five vows are:

1. Truth (*Satya*)
2. Non-violence (*Ahiṃsā*)
3. Non-stealing (*Asteya*)
4. Non-possession (*Aparigraha*)
5. Celibacy (*Brahmacarya*)

The first four vows were prescribed by Pārśvanātha and were called *cāturyāma*. Mahāvīra strictly emphasised it and divided the last into two and added celibacy as fifth.

Buddha prescribed first four and included the vow of abstinence from intoxicants as the fifth vow and called it *Pañcaśīla*.

*Chāndogyopaniṣad* described the five qualities of a Goodman and they are :

1. Penance (*Tapas*)
2. Liberality (*Dāna*)
3. Simple dealing (*Ārjavam*)
4. Non-violence (*Ahiṃsā*)
5. Truthfulness (*Satya-vacana*)

The Jaina view of non-possession is more comprehensive than abstinence. The first four vows were unanimously accepted by Brāhmanism, Buddhism and Jainism.

The fifth vow was modified by each religion according to its own requirement and suitability. In the original vow of liberality was replaced by the ascetic vow of non-possession.

Originally the life of a householder in the Brāhmanism was guided by such social virtues as sacrifice, study and liberality rather than by ascetic virtues. In the influence of Jainism Brahmanical tradition changed when Patañjali replaced liberality by non-possession.

The Brahmanical tradition originally did not favour the idea of renouncing the world in the prime of youth. It was only after the duties of worldly life were fulfilled that a person could adopt monk-hood to lead a retired life in the forest.

The *Śramaṇa* tradition influenced the *Brāhmaṇa* tradition in this respect also.

The old division of *aśramas* continued, but the new idea of renouncing the world, the very day one attains detachment was also introduced.

Jaina ethics is primarily ascetic. The *Śrāvakācāra* includes *Brahmacarya*, *Vānaprastha*, and *Samnyāsāśrama* of Hinduism in it. In Jainism the life of a householder is meant to be a short-stay for enduring the hardships of the life of a monk.

### **Some salient features of Jaina view on life**

1. Jaina view is neither based on oneness of life as in Vedānta, nor on momentary nature of self as in Buddhism. It is based on equalities of life. All souls are equal. That is why non-violence in Jainism takes into account not only the human beings or animals or insects but even plant-life or one sensed elemental life.
2. The social life as anticipated by Jaina ethics does not make any distinction on the basis of caste, creed or colour but the Jaina society adopted caste system from Hinduism and observe it as strictly as the latter. If a foreigner comes to India, he can not distinguish between the two religious and two communities.
3. Jaina ethics is based on fundamental doctrine of non-absolutism (*anekāntavāda*). This has saved Jaina Ethics from being one sided. Jaina Ethics always takes into account all the different views and tries to reconcile them e.g. various factors of time, nature, fate, accident and matter find their proper place in Jaina view of life.

4. The approach of Jainism towards opponent school of thought is constructive and not destructive. Non absolutist view led to the balanced view between such opposite conceptions as they of practical morality and transcendental morality, between fate and human efforts, between efficacy of substantial cause and instrumental cause. In fact, non-absolutism influenced the Indian society at every step. It gave the concept of social harmony among different view customs and styles of living.

Jainism never confronted with any other faith and never came in hit list of any.

Besides this Jainism followed a principle that it would not oppose any established practice of society in an absolute way<sup>19</sup>.

This principle gave a long life to Jainism in India while Buddhism disappeared from its birthplace.

5. Jaina ethics never confused the science of spirituality (*Mokṣa-śāstra*) with science of social righteousness (*Dharma-Śāstra*). It has thus been able to distinguish the essential nature of *dharma* from its non-essential beliefs, which change from time to time and place to place.

6. The cats of public welfare can be dealt with separately in books of social sciences; but they should not be confused with the essential aim of emancipation. Here Jaina thinkers alike Hindu thinkers spoke of social duties towards city, nation and family.

In the first instance Jaina and Buddhist monks wandered for preaching throughout the year but when they found that their wandering destroyed grains in the rainy season they stopped at a place for the four rainy months and studied their scriptures and preached the householders like Brāhmaṇa tradition.

7. In the someway Jaina monastic order was open for all without any distinction of caste and creed but later on the

entrance was based on pure merit. Consequently, Brahmins uphold due to their calibre and thus casteism entered indirectly in the Jaina social order.

8. The Jaina formulated their monastic rules in accordance with state legislature and social norms e.g. a child, an offender, a debtor, a slave and a diseased were restrained form the entrance. In other words the entrance of monastery needed 'no objection' certificate form society and the state.
9. Jaina Ethics is not merely a system but it is a religion to be lived in practice. Jaina householder and monks practise the rules of conduct in their lives. Thus it is a living system of ethics.
10. Equal emphasis on faith, knowledge and conduct saves Jaina Ethics from being either a mere speculation of philosophy or merely religion of rituals.

### References

1. Kundakundācārya, *Samayasāra*, Delhi, 1959, *Gāthā*-146
2. *Kāthopaniṣad* 1.1.27
3. Dayanand Bhargava, *Jaina Ethics*, MLBD, 1938, p.68, compare: G. C. Pande, 'Lectures on Jainism,' University of Delhi, 77, p14 17
4. *Samayasāra*, *Gāthā*-146
5. *Iṣṭopadeśa*
6. *Chāndogyopaniṣad*, See Dr. S. Radhakrishnan, 'The Principal Upanishads' p.7
7. *Aṅguttara-nikāya*, London, 1959, 3.61, 1-13
8. *Sāṁkhyakārikā*-Poona, 1934, verse-1
9. *Uttarādhyayana-sūtra*, SBE. Vol. XLV, 13.16
10. *Ibid.* 13.16-17
11. *Jaina Ethics*, p.14
12. *Iṣṭopadeśa*-3
13. *Bhāvasaṁgraha*, 616-17
14. *Yaśāstilaka-campū*, Bombay 1901, 8.31

15. *Uttarādhyayana* 28.3
16. Pūjyapāda on *Tattvārtha-sūtra*, 9.18
17. *Ahiṃsā-paramo-dharmaḥ Mahābhārata*
18. *Jīvo jīvasya bhojanam*
19. *Jadapi śuddham tadapi loka-viruddham na karaṇīyam na caraṇīyam.*

\*

## जिज्ञासा और समाधान

१. जिज्ञासा- जैन धर्म में दीपावली पर्व क्यों मनाते हैं? इस दिन क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए?

कु. अर्चिता जैन, अमेरिका

समाधान\*- भारतीय पर्व संस्कृति के संवाहक होते हैं। इनके पीछे महापुरुषों के जीवन और कार्यों की घटनाओं का अपूर्व इतिहास छुपा होता है। ये केवल मौज-मस्ती से सम्बन्धित नहीं होते हैं अपितु इममें एक जन-कल्याणकारी संदेश छुपा रहता है। दीपावली (दीप +आवली = दीप-पंक्ति) एक ऐसा ही ज्योति- पर्व है जो बाह्य-अन्धकार के साथ आभ्यन्तर-अन्धकार को भी दूर कर देता है। इस पर्व में हिन्दू और जैन सभी समान भाव से सम्मिलित होते हैं। इसे आध्यात्मिक चेतना का राष्ट्रीय पर्व भी कह सकते हैं। इसे मनाने के पीछे कुछ ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख हमें प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। जैसे—

१. हिन्दू पुराणों के अनुसार इस दिन मर्यादा पुरुषोत्तम राम चौदह वर्ष के वनवास के बाद 'रावण' नामक राक्षस का बध करके अयोध्या वापस आए थे। तब अयोध्यावासियों ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने तथा मर्यादा पुरुषोत्तम राम का स्वागत करने के लिए नगर को सजाकर दीपोत्सव मनाया था।
२. हिन्दू पुराणों के ही अनुसार अत्याचारी और व्यभिचारी नरकासुर नरेश ने १६००० राज-कन्याओं को कैद कर लिया था जिससे प्रजाजन बहुत संत्रस्त थे। श्रीकृष्ण ने नरकासुर का वध करके उन राजकन्याओं को मुक्त कराया था। फलस्वरूप प्रजा ने खुशी में दीप जलाये थे जो कालान्तर में ज्योति-पर्व बन गया।
३. आज के दिन अत्याचारी राजा बलि को पाताल जाना पड़ा था और प्रजा में हर्ष व्याप्त हुआ था।
४. सिक्खों के छठें गुरु हरगोविन्द सिंह जी को जेल से आज के दिन मुक्त किया गया था।
५. गुरु नानक का जन्म भी इसी दिन हुआ था।

\* प्रो. (डॉ.) सुदर्शनलाल जैन, निदेशक, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी।  
मो. ०९४१५३८८२१८

६. स्वामी दयानन्द सरस्वती की आज समाधि हुई थी।

७. जैन-परम्परानुसार कार्तिक कृष्णा अमावस्या को सूर्योदयकाल (चतुर्दशी सोमवार की रात्रि का अंतिम प्रहर तथा अमावस्या मंगलवार का उषाकाल) में चौबीसवें तीर्थङ्कर महावीर का करीब ७२ वर्ष की आयु में ई. पूर्व ५२७ (शक सं. ३०५ वर्ष ५ माह पूर्व वि.सं. ४७० वर्ष पूर्व) में परिनिर्वाण हुआ था। हरिवंश पुराण, तिलोयपण्णत्ति आदि की पौराणिक भाषा में जब चौथे काल (सुषमा-दुषमा) के समाप्त होने में ३ वर्ष ८.५ माह शेष रह गए थे तब तीर्थङ्कर महावीर का परिनिर्वाण हुआ था अर्थात् सर्वज्ञता के बाद २९ वर्ष ५ माह २० दिन बीतने के बाद तीर्थङ्कर महावीर ने अवशिष्ट चारों अघातिया कर्मों को नष्ट करके मोक्ष-लक्ष्मी का वरण किया था। इस पवित्र काल में चारों ओर एक अलौकिक प्रकाश फैल गया था। इसी दिन सायंकाल तीर्थङ्कर महावीर के प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति गौतम गणधर को केवल ज्ञान हुआ था। इन दोनों आध्यात्मिक घटनाओं की खुशी में जैन दीपावली पर्व मनाते हैं तथा उनकी स्मृति में उस दिन से महावीर निर्वाण संवत् प्रारम्भ किया गया। आज वीर निर्वाण संवत् का २५३७ वाँ वर्ष चल रहा है। इसी तरह अन्य कई घटनाएँ दीपावली पर्व के साथ जुड़ी हैं।

इस पर्व के साथ तीन अन्य पर्व भी भारतीय संस्कृति में जुड़ गए हैं जिनकी जैनधर्मानुसार व्याख्या इस प्रकार की जाती है—

(१) धनतेरस— कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को भगवान् ने बाह्य लक्ष्मी समवसरण का त्याग करके मन, वचन और काय का निरोध किया था। उस योग-निरोध से भगवान् को मोक्षलक्ष्मी प्राप्त हुई थी। अतः मोक्ष-लक्ष्मी की प्राप्ति में निमित्तभूत त्रयोदशी धन्य (धनतेरस) हो गई। अतः आज के दिन बाह्य-संग्रह का त्याग करके रत्नत्रय का संग्रह करना चाहिए। न कि बाजार से सोना, चाँदी, बर्तन आदि खरीदना चाहिए।

(२) रूपचौदस— का. कृ. चतुर्दशी को भगवान् महावीर ने १८ हजार शीलों को प्राप्त कर रत्नत्रय की पूर्णता की थी तथा पूर्णरूप से अपने स्वरूप में लीन हो गए थे जिससे यह 'रूप चौदस' का पर्व बन गया।

(३) गोवर्द्धन पूजा— कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा के दिन केवलज्ञान प्राप्ति के बाद स्वामी गणधर गौतम के मुखारविन्द से सप्तभङ्गी-अनेकान्त स्याद्वादमयी दिव्यध्वनि प्रथम बार प्रकट हुई थी। अतः यह दिन गोवर्द्धन पूजा (गो =

सप्तभङ्गमयी जिनवाणी का वर्द्धन) के रूप में प्रचलित हुआ। जैनेतर लोग गोबर से चित्रादि बनाकर सप्तपूत मां की कथा का श्रवण करते हैं।

(४) दीपावली या दिवाली— दीपावली को दिवाली भी कहते हैं जिसका एक अर्थ यह भी कुछ लोग करते हैं— 'सांसारिक प्रपञ्चों का दिवाला निकालना' (कर्मों का नाश करना)। यह अर्थ भी भगवान् के परिनिर्वाण से जुड़ा है क्योंकि इस दिन उन्होंने सभी कर्मों (घातिया-अघातिया) से छुटकारा पा लिया था। चित्त की निर्मलता होने पर आत्मा में एक नाद होता है जिसके विस्फोट (पटाका फूटना) से सभी कषायें चूर-चूर हो जाती हैं। अतः हम जो राग-द्वेष के जाल से जकड़े हुए हैं उसे हटाना है अर्थात् आत्म-घर की सफाई करना है। बाह्य अन्धकार के साथ आभ्यन्तर अन्धकार को भी इस दिन दूर करना चाहिए। यह इस पर्व का लक्ष्य है। जैसे तिल-तिल जलता दीपक प्रकाश देता है वैसे ही हमें तप द्वारा कर्मों को जलाकर आभ्यन्तर को प्रकाशित करना चाहिए।

करुणा, दया, प्रेम, इंसानियत और वात्सल्य को प्रजाजन में उड़ेलना चाहिए। जन्म-जन्मान्तरों से ईर्ष्या, घृणा, लोभ, मोह और अहंकार की जो एक मोटी से काली परत आत्मा पर चढ़ी है उसे यदि साफ करना है तो कषायों को जलाना होगा क्योंकि पवित्र हृदय में ही मानवता की दिव्य ज्योति जगमगाती है। गरीबों की गरीबी दूर कर उन्हें प्रकाश दीप देना चाहिए। उन्हें भरपेट खाना खिलाना चाहिए।

आज दिगम्बर जैन समाज में प्रातःकाल पूजा के बाद महावीर निर्वाण का लाडू चढ़ाया जाता है और सायंकाल रात्रि में भी पूजा आदि की जाती है। व्यापारी वर्ग लेखा-जोखा करके गणेश और लक्ष्मी का पूजन करते हैं। कुछ जैनी भगवान् महावीर के साथ तिजोरियों से धन निकाल कर गणेश और लक्ष्मी की भी एक साथ पूजा करते हैं जो ठीक नहीं है। आतिशबाजी, जुआ आदि की कुछ विसंगतियाँ भी आज के दिन के साथ जुड़ गई हैं जो दीपावली की मूल धारणा के प्रतिकूल हैं। तान्त्रिक आज की रात्रि को मंत्र-सिद्धि का अनुकूल समय मानते हैं जो सांसारिक परिभ्रमण में कारण है। वस्तुतः जैन दृष्टि से दीपावली पर्व आत्मशुद्धि द्वारा आत्मा को केवलज्ञान की ज्योति से प्रकाशित करने का पर्व है।

२. जिज्ञासा— 'नमोकार अथवा 'णमोकार' मंत्र के सम्बन्ध में जानकारी दीजिए।

कु. सृष्टि जैन, भोपाल

**समाधान—**

सं.	नमोकार मंत्र	अक्षर	मात्रा	स्वर	व्यञ्जन
१.	नमो (णमो) अरिहन्ताणं	७	११	६	६
२.	नमो (णमो) सिद्धाणं	५	९	५	५
३.	णमो (णमो) आइरियाणं	७	११	७	५
४.	नमो (णमो) उवज्जायाणं	७	१२	७	६
५.	नमो (णमो) लोए सत्वसाहूणं	९	१५	९	८
<b>योग</b>		<b>३५</b>	<b>५८</b>	<b>३४</b>	<b>३०</b>

इसका अर्थ है— सभी अर्हन्तों को नमस्कार है। सभी सिद्धों को नमस्कार है। सभी आचार्यों को नमस्कार है। सभी उपाध्यायों को नमस्कार है और लोक के सभी सच्चे साधुओं को नमस्कार है। इस मंत्र में 'लोए' और 'सव्व' 'अन्त्यदीपक' हैं जिसका अर्थ है इन्हें सभी मन्त्र वाक्यों के साथ जुड़ा हुआ समझना चाहिए।

प्राकृत भाषा में रचित यह पंच परमेष्ठी वाचक मंत्रराज है। इसका संस्कृत रूप है नमस्कार मंत्र। यह सभी पापों को नष्ट करने वाला और सभी मंगलों में प्रथम (श्रेष्ठ) मंगल है। कहा है—

**एसो पंच णमोयारो सव्व-पावप्पणासणो ।**

**मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होई मंगलं ॥**

इस मन्त्र के कई रूप मिलते हैं, जैसे—

(१) **अरिहंत**— मोह रूप कर्म-शत्रुओं को नष्ट करने वाला या उन्हें आत्मा से अलग करने वाला। यहाँ हिंसा का भाव नहीं है।

(२) **अरहन्त** (अर्हन्त)— यह पूज्यार्थक 'अर्ह' धातु से बना है। अतः इसका अर्थ है 'पूज्य'।

(३) **'अरूहंताणं'** इसका अर्थ है संसार रूपी वृक्ष के बीज को दग्ध करने वाला। 'अरूह' अर्थात् जो बीज पुनः अंकुरित न हो।

(४) **'नमो'** के स्थान पर दिगम्बर परम्परा में 'णमो' का प्रयोग मिलता है। प्राकृत के नियमानुसार 'न' को 'ण' होता है परन्तु हेमचन्द्राचार्य ने पद के आदि के 'न' के प्रयोग को उचित बतलाया है।

(५) **'आयरियाणं या आइरीयाणं'** दोनों प्रयोग मिलते हैं। प्राकृत नियमानुसार आयरियाणं में 'य' श्रुति हुई है।

(६) **'सव्व'** के स्थान पर 'सब्ब' भी प्रयुक्त होता है।

इस मंत्र का सभी को प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल अवश्य स्मरण (जप) करना चाहिए। यह नमस्कार मंत्र अहंकार का विसर्जन करता है। आत्मशुद्धि करता है। इस मंत्र के कई नाम हैं—पंच नमस्कार मंत्र, महामंत्र, अपराजित मंत्र, मूलमंत्र, अनादिनिधन मंत्र, मंगल मंत्र, परमेष्ठी मंत्र आदि। इस मंत्र में किसी देवता को नमस्कार नहीं किया गया है, अपितु जिन्होंने तप-ध्यान के द्वारा अपनी आत्मा का कल्याण किया है तथा जो आत्म-कल्याण के मार्ग में स्थित हैं तथा भविष्य में मुक्ति प्राप्त करने वाले हैं, ऐसे महापुरुषों को नमस्कार किया गया है। इस मंत्र के द्वारा किसी प्रकार की याचना नहीं की गई है फिर भी अपने आप कार्यसिद्धि होती है, जैसे अंजन चोर को आकाश-गामिनी विद्या की प्राप्ति, मरणासन्न कुत्ते को राजकुमार जीवन्धर द्वारा यह मंत्र सुनाने पर सुदर्शन नामक यक्षेन्द्र देवत्व की प्राप्ति। निन्दा करने पर सुभौम चक्रवर्ती को सातवें नरक की प्राप्ति।

इस महामंत्र का संक्षिप्त रूप 'ॐ' है। 'ओम्' (अ + अ + आ + उ + म्) में पाँचों परमेष्ठियों के आदि अक्षर समाहित हैं, जैसे— अ = अरहन्त, अ = अशरीरी, सिद्ध, आ = आचार्य, उ = उपाध्याय और म् = मुनि (साधु)। कहा है—

अरहंता असरीरा आयरिया तह उवज्झाया मुणिणो।

पढमक्खर-णिप्पण्णो ओंकारो पंच परमेष्ठी ।।

इसका दूसरा संक्षिप्त रूप है— अ-सि-आ-उ-सा नमः।



आप प्रश्न कर सकते हैं कि सिद्धों को पहले नमस्कार करना चाहिए क्योंकि उन्होंने आठों कर्मों को निर्जीर्ण कर दिया है जबकि अर्हन्तों ने अभी सभी अघातिया कर्मों को निर्जीर्ण नहीं किया है। इसका उत्तर है कि अर्हन्त ही हमें संसार-सागर से पार उतरने का समवसरण में दिव्य उपदेश देते हैं। अतः उन्हें प्रथम नमस्कार किया है। वे ही हमारे मार्ग दर्शक हैं। सिद्ध अशरीरी हैं उनसे साक्षात् उपदेश नहीं मिलता है। वस्तुतः 'सिद्ध' और 'अर्हन्त' ये परमात्मा की दो अवस्थायें हैं— सशरीरी-अवस्था (जीवन्मुक्त या केवलज्ञानी) और अशरीरी-अवस्था (विदेहमुक्त या सिद्ध)।

## विद्यापीठ के प्रांगण में

### पाण्डुलिपियों के संपादन एवं उनकी समीक्षा पर कार्यशाला

९ नवम्बर से ३० नवम्बर २०१० तक पार्श्वनाथ विद्यापीठ में इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, वाराणसी तथा राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन, नई दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान में कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस कार्यशाला के उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता प्रो. आर. सी. पण्डा, संकाय प्रमुख, संस्कृत विद्या धर्मविज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने की। इसके मुख्य अतिथि पूर्व कुलपति, गोरखपुर विश्वविद्यालय, प्रो. बी.एम. शुक्ल थे। कार्यशाला का परिचय डॉ. वी.एस. शुक्ला ने दिया। स्वागत इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र (IGNCA) के परामर्शदाता प्रो. कमलेश दत्त त्रिपाठी ने दिया तथा धन्यवाद ज्ञापन विद्यापीठ के निदेशक प्रो. सुदर्शन लाल जैन ने किया। इसके समापन समारोह में अध्यक्षता विद्यापीठ के निदेशक प्रो. सुदर्शनलाल जैन ने की तथा इसके मुख्य अतिथि थे प्रो. बी.डी. सिंह, रेक्टर, बी.एच.यू.। प्रो. के. डी. त्रिपाठी ने कार्यशाला में उपस्थित विद्वज्जनों का स्वागत किया तथा डॉ. एन.डी. तिवारी ने कार्यशाला का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया। धन्यवाद ज्ञापन डॉ. प्रणति घोषाल ने किया। कार्यशाला में शारदा व नेवारी लिपियों का पुनर्निरीक्षण, विद्वानों के व्याख्यान तथा पाण्डुलिपियों की प्रयोगात्मकता पर कार्य किया गया। इस कार्यशाला में स्थानीय तथा बाहर से आये हुए व्याख्यानकर्ता थे—प्रो. वी.वी. जहीपाल, प्रो. प्रकाश चन्द्र पाण्डेय, एन. झा, प्रो. रत्ना वासु, प्रो. जी.सी. त्रिपाठी, वी.एस. शुक्ला, डॉ. श्रीमती सुभद्रा देसाई, डॉ. जितेन्द्र बी. शाह, प्रो. बसन्त कुमार भट्ट, प्रो. के.डी. त्रिपाठी, प्रो. आर. शुक्ला, प्रो. आर. सी. पण्डा, प्रो. आर.सी. पाण्डेय, प्रो. वाई. के. मिश्रा, प्रो. एस. एल. जैन आदि। इस कार्यक्रम में श्री सी. आर. गरेखान, अध्यक्ष इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र (IGNCA) ट्रस्ट तथा प्रो. दीप्ति त्रिपाठी निदेशक (NMM, New Delhi) ने अपनी गरियामयी उपस्थिति से इस कार्यशाला को गौरवान्वित किया। कार्यशाला अत्यन्त उपयोगी रही जिसमें संस्थान के निदेशक प्रो. सुदर्शनलाल जैन ने पूर्ण सहभागिता देते हुए जैन साहित्य का इतिहास, विद्यापीठ में संगृहीत पाण्डुलिपियों का विवरण तथा उनकी महत्ता पर प्रकाश डाला।

## विद्यापीठ परिवार द्वारा सामूहिक दीपावली-पूजन

४ नवम्बर, रात्रि ८ बजे दीपावली के पावन अवसर पर संस्थान के निदेशक प्रो. सुदर्शनलाल जैन के विशेष आह्वान पर एक सामूहिक जैन पूजा का आयोजन किया गया जिसमें विद्यापीठ के समस्त कर्मचारीगण, अधिकारीगण, पार्श्वनाथ विद्यापीठ में रह रहे समस्त छात्र-छात्राएँ, अध्यापक आदि उपस्थित थे। प्रो. जैन ने जैन विधि-विधान के अनुसार मन्त्रोच्चार सहित पूजन किया तथा संस्थान की स्थापना के ७३ वर्ष पूरे होने की खुशी में ७३ दीप प्रज्वलित किये गये व प्रसाद वितरण किया गया।

## जैना के संस्थापक डॉ. तनसुख साल्गिया जी का अपने सहयोगी मित्रों के साथ विद्यापीठ में आगमन

डॉ. तनसुख साल्गिया, पूर्व अध्यक्ष व संस्थापक-जैना (फेडरेशन आफ जैन एसोसियेशन, नार्थ अमेरिका) तथा मानद सदस्य- अन्तर्राष्ट्रीय महावीर जैन मिशन, जैन सोसायटी ग्रेटर क्लीव लैण्ड, महावीर विजन, ब्राह्मी जैन सोसायटी तथा एशियन अमेरिकन सर्विस कौन्सिल, का विद्यापीठ में आगमन दिनांक १६.११.२०१० को हुआ। आपके साथ आपकी पत्नी, मित्र धीरज भाई संघवी, मुम्बई तथा प्रो. रमेश चन्द चतुर्वेदी, लखनऊ भी थे। डॉ. साल्गिया ने विद्यापीठ में चल रही परियोजनाओं में विशेष रुचि ली तथा संग्रहालय आदि अनेक परियोजनाओं पर सहयोग करने का आश्वासन दिया।

## पार्श्वनाथ विद्यापीठ में बड्डमाणु स्तूप पर व्याख्यान

२१ नवम्बर २०१० को पार्श्वनाथ विद्यापीठ में लाला श्री हरजसराय जैन स्मृति व्याख्यान-माला के अन्तर्गत प्रो. विजय कुमार बाबू, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, ओस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद ने “आन्ध्र के जैन स्मारक, बड्डमाणु स्तूप: एक अध्ययन” पर व्याख्यान देते हुए उक्त विषय पर प्रकाश डाला और कहा कि ‘कुछ अभिलेख व इमारतें ऐसी हैं जिनमें से जैन इतिहास के सन्दर्भों को सुनिश्चित करने में पर्याप्त सहायता मिलती है। उन्हीं स्मारकों में से बड्डमाणु स्तूप एक प्रमुख स्मारक है जो तत्कालीन समाज के आर्थिक, सामाजिक स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। प्रो. बाबू के अनुसार बड्डमाणु स्तूप पर अंकित कला की तुलना उदयगिरि, खण्डगिरि में प्राप्त होने वाली कला से की जा सकती है। इसमें मुख्य रूप से मछली,

श्रीवत्स, चक्र, पूर्णघट, कल्पवृक्ष तथा स्वस्तिक का अंकन हुआ है।

कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रो. मारुति नन्दन प्रसाद तिवारी ने, संचालन डॉ. श्रीप्रकाश पाण्डेय ने तथा धन्यवाद ज्ञापन निदेशक, पार्श्वनाथ विद्यापीठ प्रो. सुदर्शन लाल जैन ने किया।

## पार्श्वनाथ विद्यापीठ-आई.एस.जे.एस. ग्लोबल सेन्टर की गतिविधियाँ

जैसा कि आपको विदित है कि पार्श्वनाथ विद्यापीठ को विदेशी छात्रों/विद्वानों को जैन धर्म-दर्शन एवं संस्कृति से परिचित कराने एवं जैनविद्या पर उनके विशेष अध्ययन हेतु एक पी.वी.-आई.एस.जे.एस. ग्लोबल सेन्टर की स्थापना की गयी है। यह सेन्टर अन्तर्राष्ट्रीय जैन अध्ययन स्कूल (आई.एस.जे.एस.) के सहयोग से डॉ. सुलेख जैन (यू.एस.ए.) के नेतृत्व एवं डॉ. शुगनचन्द्र जैन के मार्गदर्शन में स्थापित किया गया है। आई.एस.जे.एस. के भारत में तीन मुख्य केन्द्र बनाए गए हैं- दिल्ली, जयपुर एवं वाराणसी। वाराणसी (पार्श्वनाथ विद्यापीठ) में विगत चार वर्षों से विदेशी छात्र/विद्वान् आई.एस.जे.एस. के सहयोग से जैन विद्या पर विशेष अध्ययन हेतु लगातार आ रहे हैं। इनके पठन-पाठन, भोजन आवास की समुचित व्यवस्था पार्श्वनाथ विद्यापीठ आई.एस.जे.एस. के सहयोग से करता है।

विदेशी छात्रों को जैन विद्या अध्ययन के लिए कैसे प्रोत्साहित किया जाये, कैसे उनकी इस क्षेत्र में अभिरुचि बढ़ाई जाये? इस विषय पर विचार-विमर्श करने के लिए आई.एस.जे.एस. ने उससे जुड़े सदस्यों की एक बैठक छोटी दादावाड़ी, दिल्ली में दिनांक १६-१७ दिसम्बर २०१० को बुलाई थी। बैठक में लगातार दो दिनों तक समर स्कूल के अनेक बिन्दुओं पर चर्चा हुई, जिनमें अनेक बहुमूल्य सुझावों को रेखांकित किया गया।

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि अन्तर्राष्ट्रीय जैन अध्ययन स्कूल (आई.एस.जे.एस.) अब पार्श्वनाथ विद्यापीठ के अकादमिक विकास में अपनी हर सम्भव सहायता देगा तथा पार्श्वनाथ विद्यापीठ को जैन विद्या के एक विशेष केन्द्र के रूप में विकसित करेगा। आई.एस.जे.एस. के निदेशक डॉ. शुगनचन्द्र जैन जो पार्श्वनाथ विद्यापीठ प्रबन्ध-समिति के अध्यक्ष भी हैं, संस्था के चतुर्दिक विकास के लिए कटिबद्ध हैं। विद्यापीठ में अब शीघ्र ही एम.ए. जैन विद्याध्ययन और योग पर नूतन पाठ्यक्रम चलाए जायेंगे तथा दूरस्थ शिक्षा के माध्यम

से भी संस्था के अकादमिक कैलेण्डर में नूतन जीवन का संचार किया जाएगा। ग्रन्थालय (पाण्डुलिपि-ग्रन्थों तथा मुद्रित ग्रन्थों का भण्डार) तथा म्यूजियम को नया रूप देकर विस्तार किया जायेगा।

## ‘तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ’ पर संगोष्ठी सम्पन्न

दिनांक २८.१२.२०१० को पार्श्वनाथ विद्यापीठ में ‘तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ’ पर उनकी जन्म जयन्ती (३१.१२.२०१०) के उपलक्ष्य में एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी के मुख्य अतिथि थे-प्रोफेसर इमरीट्स प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदी, सारस्वत अतिथि थे संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय के डीन प्रो. आर. सी. पण्डा तथा अध्यक्ष थे स्वतन्त्र चिंतक श्री शरद कुमार ‘साधक’। अन्य प्रमुख वक्ता थे प्रो. फूलचन्द्र जैन प्रेमी, प्रो. कमलेश कुमार जैन, डॉ. मुन्नी पुष्पा जैन, डॉ. अरुण प्रताप सिंह, साध्वी श्री सिद्धन्तरसा जी, साध्वी मैत्रीकला जी आदि। कार्यक्रम का संचालन तथा अतिथियों का स्वागत प्रो. सुदर्शन लाल जैन, निदेशक पार्श्वनाथ विद्यापीठ ने किया। धन्यवाद ज्ञापन डॉ. श्रीप्रकाश पाण्डेय, सहनिदेशक ने किया।

सभी वक्ताओं ने पार्श्वनाथ के बहुआयामी व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए उनकी शिक्षाओं की आज के संदर्भ में उपयोगिता बतलाई।

## श्री शरद कुमार ‘साधक’ जी के पार्थिव शरीर का अनुकरणीय दान

‘तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ’ पर आयोजित संगोष्ठी की अध्यक्षता कर रहे स्वतन्त्र चिंतक श्री शरद कुमार ‘साधक’ का संगोष्ठी-समाप्ति के तुरन्त बाद अचानक हृदयगति रुक जाने से स्वर्गवास हो गया। अथक प्रयास के बाद भी उन्हें बचाया नहीं जा सका। आपके आदर्श थे महात्मा गांधी और विनोबाजी। समाजसेवा आपका लक्ष्य था। वे जैसा कहते थे वैसा ही आचरण में स्वयं लाते थे। ७९ वर्षीय साधकजी ने इसीलिये अपनी वसीयत में पहले से लिख दिया था कि मेरी मृत्यु के बाद मेरे शरीर के कण-कण का उपयोग समाजसेवा में लगे और उसे अस्पताल में दान दे दिया जाये। तदनुसार ही उनके परिवारवालों ने उनके पार्थिव शरीर को स्थानीय सरसुन्दरलाल अस्पताल का.हि.वि.वि. को दान में दे दिया।

आपका जन्म चारभुजा (मेवाड) में दिनांक २-८-१९३१ को हुआ था।

८४ : श्रमण, वर्ष ६१, अंक ४ / अक्टूबर-दिसम्बर-१०

कई ग्रन्थ आपकी लेखनी से प्रसूत हुए, कई ग्रन्थों और पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया। विद्यारत्न आदि कई सम्मानों से आप सम्मानित किये गये। आपकी धर्मपत्नी प्रभा देवी ने उनके कंधे से कंधा मिलाकर पूर्ण सहयोग किया। पर्यावरण संरक्षण तथा गो सेवा के लिये निरन्तर प्रयत्न करते रहे। पार्श्वनाथ विद्यापीठ से आपका काफी लगाव था?

एसे मनीषी अध्यात्मप्रेमी और समाजसेवी शरद कुमार 'साधक' के आकस्मिक महाप्रयाण से पार्श्वनाथ विद्यापीठ परिवार मर्माहत है तथा उनके परिवार को यह दुःख सहन करने की क्षमता प्राप्त हो ऐसी कामना करता है।

### श्रमण के नये सदस्य

- |                        |        |
|------------------------|--------|
| १. श्री अनिल मेहता     | ५००/-  |
| २. श्री सतीश कुमार जैन | १०००/- |
| ३. श्री अतुल जैन       | २०००/- |
| ४. श्री अतिवीर जैन     | २०००/- |

### विद्यापीठ को प्राप्त सहायता राशि—

- |   |        |
|---|--------|
| १. श्री तनसुख साल्लिया  | ७५००/- |
| २. श्री सुनील जैन   | २७७०/- |
| ३. श्री अतिवीर जैन (प्रो. विमल दास कोंदिया एवं विद्या देवी जैन की स्मृति में) | ३५००/- |

## संक्षिप्त समाचार

१. मुम्बई में २०-२१ नवम्बर २०१० को आचार्य श्री सुनील सागर जी के सान्निध्य में प्राकृत परिचर्चा सम्पन्न हुई। जिसमें “अज्झप्पसारो” ग्रन्थ का विमोचन आचार्य श्री सुनील सागर जी म.सा. द्वारा हुआ तथा श्रुत सेवा यंग अवार्ड पुरस्कार के अन्तर्गत श्री सागर शाह शास्त्री, मुम्बई को पुरस्कृत किया गया।
२. वैशाली २० नवम्बर २०१० को प्राकृत जैन शास्त्र एवं अहिंसा शोध-संस्थान में डॉ. गुलाबचन्द चौधरी व्याख्यानमाला का आयोजन डॉ. रवीन्द्र कुमार सिंह, अध्यक्ष, दर्शन विभाग, बिहार विश्वविद्यालय की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। तदुपरान्त वर्ष २००८ में प्राकृत व जैन शास्त्र में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले छात्र श्री रत्नाकर शुक्ल को प्रो. भागचन्द जैन स्वर्ण पदक प्रदान किया गया। डॉ. श्रेयांस कुमार सिंघई, जयपुर ने “पवयणपाहुड में श्रमण” विषय पर व्याख्यान दिया। निदेशक प्राकृत जैन शास्त्र एवं अहिंसा शोध संस्थान डॉ. ऋषभ जैन ने संचालन किया। पार्श्वनाथ विद्यापीठ के निदेशक प्रो. सुदर्शनलाल जैन अस्वस्थता के कारण वहाँ व्याख्यान देने नहीं पहुँच सके।
३. इन्दौर, २ दिसम्बर २०१० को प्रो. प्रेम सुमन जैन को जैन विद्या के क्षेत्र में उनके द्वारा दिये गये महत्त्वपूर्ण योगदान के लिये वर्ष २००९ का कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार दिया गया तथा प्रशस्ति-पत्र के साथ २५ हजार रुपये की सम्मान राशि प्रदान की गयी।

## साभार प्राप्ति

- (क) श्री देवेन्द्रसूरि विरचित तथा श्री सर्वोदय सागर जी द्वारा पद्यानुवादित तथा श्री चरित्ररत्न फा.चे. ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ—
१. कर्मविपाक (कर्मग्रन्थ) २. कर्मस्तव (कर्मग्रन्थ), ३. बन्धस्वामित्व (कर्मग्रन्थ), ४. षडशीति (कर्मग्रन्थ) ५. शतक (कर्म ग्रन्थ) ६. सप्ततिका (कर्मग्रन्थ), ७. चैत्य वंदन भाष्य, ८. गुरु वंदन भाष्य तथा ९. पञ्चवखाण भाष्य।
- (ख) श्री शांतिसूरि विरचित/श्री अचल गच्छेश, श्री गौतम सागर सूरेश्वर जी द्वारा गुजराती पद्यानुवादित तथा श्री चरित्ररत्न फा.चे. ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ—
१. जीव विचार प्रकरण, २. दण्डक प्रकरण, ३. नवतत्त्वप्रकरण तथा ४. लघु संग्रहणी।
- (ग) कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली के प्रकाशन—
१. वन्दे-तद्गुणलब्धये, सतीश जैन, २. सूतक-पातक न मानने वाला मिथ्यादृष्टि, श्वेतपिच्छाचार्य, विद्यानन्द मुनि, ३. पिच्छि-कमण्डलु, विद्यानन्द मुनि, ४. जैन : शासन ध्वज, ५. वन का पति वनस्पति-मुनि विद्यानन्द तथा ६. पद्मावती, मुनि विद्यानन्द।
- (घ) अन्य स्थानों से प्राप्त ग्रन्थ—
१. दीपावली पूजनम्, पं. हेमन्त जी काला एवं पं. भरत काला, २. जिनशासन का विभूतियाँ, श्री ज्ञानमुनि जी महाराज, श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन संघ, मल्लिश्वरम्, बंगलोर, ३. योगदृष्टि सम्मुच्चय :सटीक: लेखक हरिभद्रसूरि, संपादक- विजयशील चन्द्रसूरि, प्रकाशक- श्री जैन ग्रन्थ प्रकाशन समिति, ४. जैन पंचांग, संयोजक- प.पू. मुनिराज, प्रकाशक मेवाड़ केशरी फाउण्डेशन, शाहीबाग अहमदाबाद, ५. जैन धर्म में आचारशास्त्रीय सिद्धान्त, खण्ड-१, लेखक-संपादक- डॉ. कमलचन्द सोगानी, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री महावीर जी, राजस्थान, ६. ज्ञानधारा, संपादक- नवनीत कुमार जैन, डॉ. सुधाकर नाथ मिश्रा, श्रुत संवर्द्धन संस्थान, ७. जैन धर्म का इतिहास, भाग- १, २, ३, कैलाश चन्द्र जैन, प्रकाशक- डी. के. प्रिंटवर्ल्ड (प्रा.) लि.

नई दिल्ली, २०१० मेरठ ८. *Sumati-Jnana*, Editor Dr. Shiv Kant Dwivedi, Dr. Navneet Kumar Jain, Publisher-Acharya Shanti Sagar Chhani Smriti Granthmala, Budhana, Muzaffar Nagar, 9. *Surya Prabha* (Studies in Jainology) Chief Editor-Prof. Hampa Nagarajaia, Editor Prof. Arvind Kumar Singh, Dr. Navneet Kumar Jain, Pub. Acharya Shanti Sagar Chhani Smriti Granthamala, Budhana (U.P.), 10. *History of Jainism*, K.C. Jain, Vol-1,2,3 Publisher-D.K. Printworld (P.) Ltd., New Delhi, 2010.

(ड) सुदर्शनलाल जैन, निदेशक पार्श्वनाथ विद्यापीठ द्वारा भेंट शोध-प्रबन्ध

१. सुबन्धु की वासवदत्ता : एक समीक्षात्मक परिशीलन— विश्वरंजन सिंह, २. विज्ञानभिक्षु प्रणीत योगसार संग्रह का समीक्षात्मक अध्ययन— अशोक कुमार, ३. संस्कृत साहित्य में काव्य-लक्षण और काव्य-प्रयोजन— आशारानी वर्मा, ४. श्री नेहरू चरितम् का समीक्षात्मक अध्ययन— उदयनारायण पाण्डेय, ५. भारतीय दर्शन में भक्ति की अवधारणा— राकेश दत्त मिश्र, ६. सुदर्शनोदय महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन— अर्चना सिंह, ७. मालविकाग्निमित्र और उसकी टीका का अध्ययन— लक्ष्मी देवी गुप्ता, ८. सर्वार्थसिद्धि एक अध्ययन— सविता अस्थाना, ९. प्रमुख पुराणों में श्री नारद— संतोष पाण्डेय, १०. वेदान्त केशरी : एक परिशीलन— सुमन रटाटे, ११. महाकवि कालिदास कृत मेघदूत और मेरुतुंगकृत जैन मेघदूत— रविशंकर मिश्र. १२. श्रीलंका के सांस्कृतिक अनुष्ठानों पर वेद-वेदांगों का प्रभाव— श्री विसुद्धि थेरो, १३. प्रमुख संस्कृत काव्यों में भक्ति— रागिनी श्रीवास्तव, १४. वेदान्त में समाजवाद के स्रोत— ममता राय, १५. आचार्य विठ्ठल नाथ विरचित गाररसमण्डलम्— शुचि अग्रवाल, १६. पञ्चाध्यायी : एक समीक्षात्मक अध्ययन— मनोरमा जैन, १७. जैन साहित्य में भक्ति की अवधारणा— धरमचन्द जैन, १८. वस्तुपाल की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन— विवेक पाण्डेय, १९. नास्तिक दर्शन में कार्य-कारण सिद्धान्त : एक मूल्यांकन— श्रीमती सुषमा सिंह, २०. ऋग्वेदीय और अथर्ववेदीय समाज का तुलनात्मक अध्ययन— नामवर सिंह, २१. तैत्तिरीयोपनिषद् का आलोचनात्मक अध्ययन— श्रीमती तारा देवी, २२. पण्डितराज जगन्नाथ के काव्य ग्रन्थों का समीक्षात्मक अध्ययन— मनुलता शर्मा, २३. संस्कृत साहित्य में यथार्थ— कमलेश कुमार, २४. विशेषावश्यक भाष्य के गणधरवाद एवं निह्वववाद की दार्शनिक समस्याएँ एवं

समाधान— साध्वी विचक्षणश्री, २५. संबोधि का समीक्षात्मक अनुशीलन— समणी स्थित प्रज्ञा, २६. उदयनकथाश्रित संस्कृत रूपकों का समीक्षात्मक अध्ययन— उषा देवी, २७. उपरूपकों का उद्भव एवं विकास— इन्द्रा चक्रवाल, २८. भारतीय दर्शन में मृत्यु की अवधारणा— कल्पना पाण्डेय, २९. भारतीय दर्शन में गुण विचार— सुधांसु कुमार षडंगी, ३०. धनञ्जय की दृष्टि में रस : एक समीक्षात्मक अध्ययन— रेनू रानी, ३१. वेदान्त और जैन दर्शन में तत्त्वमीमांसा— पीयूषरानी अग्रवाल, ३२. आरण्यकों एवं उपनिषदों में वनस्पतियों एवं औषधियों का समीक्षात्मक अध्ययन— कुमुद श्रीवास्तव, ३३. भारतीय दर्शनों में ईश्वर की अवधारणा— परमानन्द पाण्डेय, ३४. जैन चम्पू काव्यों का समीक्षात्मक अध्ययन— मणिनाथ मिश्र, ३५. शुक्ल यजुर्वेद में प्राप्त आयुर्वेदिक तत्त्वों का विवेचन— शशि श्रीवास्तव, ३६. जयदेव और उनका प्रसन्नराघव— परमेश्वर दत्त शुक्ल, ३७. भारतीय दर्शनों में कर्म सिद्धान्त—सुरेन्द्र कुमार पाण्डेय, ३८. विधिमार्गप्रपा के परिप्रेक्ष्य में जैन विधिविधान— साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी, ३९. प्रमुख उपनिषदों की विवेचन पद्धतियाँ— राजीव अग्रवाल, ४०. जैन दर्शन में त्रिविध आत्मा की अवधारणा— साध्वी प्रियलता श्री, ४१. जयोदय महाकाव्य की समालोचनात्मक गवेषणा— श्रीमती रेणू जैन, ४२. भासकालीन सामाजिक अनुशीलन— श्यामसुन्दर दुबे, ४३. रूपगोस्वामी प्रणीत पद्यावली का समीक्षात्मक अध्ययन— श्रीमती आभा, ४४. श्रीमद्भागवत पुराण में योग तत्त्व—श्रीमती सविता, ४५. महामहोपाध्याय वासुदेव शास्त्री प्रणीत अद्वैतामोद का समीक्षात्मक अध्ययन— सीमा जैन, ४६. संक्षेप शारीरक सारसंग्रह—सीमा जैन, ४७. नैषधीयचरित महाकाव्य की श्लेष विच्छित्तियों का सांगोपांग अध्ययन— कविता शर्मा, ४८. भारतीय दर्शन में सापेक्षवाद—ऋचा चतुर्वेदी, ४९. जानकीहरणमहाकाव्ये महर्षिवाल्मीके: प्रभाव— राघवकुमार झा, ५०. वाल्मीकि रामायण के अरण्यकाण्ड का समीक्षात्मक अध्ययन— अजय कुमार पाठक, ५१. पूर्व-मीमांसा एवं न्याय दर्शन में प्रमाण— प्रेमचन्द श्रीवास्तव, ५२. रूपगोस्वामी विरचित ललितमाधव-विदग्धमाधव का आलोचनात्मक अध्ययन— गीता श्रीवास्तव, ५३. नाट्यशास्त्र के आंगिक अभिनय का समीक्षात्मक अध्ययन— नीलम श्रीवास्तव, ५४. प्रस्थानत्रयी शांकर भाष्य में कर्म का स्वरूप— अंजुलता दुबे, ५५. वैशेषिक एवं जैन तत्त्वमीमांसा में द्रव्य का स्वरूप— पंकज मिश्र, ५६. जैन आगमों के आचार दर्शन एवं पर्यावरण संरक्षण का मूल्यांकन— मुनि भुवनेश विद्यार्थी, ५७. स्वामी सच्चिदानन्द

सरस्वती कृत सूत्रभाष्यार्थ तत्त्वविवेचनी— दुर्गेश, ५८. दशकुमारचरित का साहित्यिक अनुशीलन— सरोज गोस्वामी, ५९. देव कृत षोडशोपनिषद् का सम्पादन एवं सांस्कृतिक अध्ययन—श्रीमती सरोज जैन, ६०. प्राणी संरक्षण एवं पर्यावरण— श्रीमती नीलम चपलोत्त, ६१. संस्कृत रूपकों में नायक विधान— शिव कुमार मिश्र, ६२. कवि कृष्णभट्ट कृत ईश्वरविलास महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन— निशा नागर, ६३. सांख्य दर्शन का ऐतिहासिक विकास और उसका नास्तिक दर्शनों पर प्रभाव— विमला कुमारी, ६४. वैदिक साहित्य में श्रमण परम्परा के तत्त्व— गीता देवी, ६५. Data base for students record, संजय कुमार जैन और अमित कुमार उपाध्याय ६६. प्रस्थानत्रयी शांकरभाष्य में मनस् का विवेचन— अर्चना कुमारी।



## श्रमण अतीत के झरोखे में ( द्वितीय खण्ड )

( ई. सन् १९९८ से २०१० तक )

संकलनकर्त्री : डॉ. शारदा सिंह, शोधाधिकारी, पार्श्वनाथ विद्यापीठ

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
अंगविज्ञा और नमस्कार मन्त्र की विकास यात्रा	डॉ. सागरमल जैन	आगम और साहित्य	४९	१-३	१९९८	१-८
जैन सन्दर्भ में अचेतन द्रव्य व्यवस्था	डॉ. विनोद कुमार तिवारी	दर्शन-तत्त्व मीमांसा और ज्ञान मीमांसा	४९	१-३	१९९८	९-१३
जैन दर्शन का मानववादी दृष्टिकोण	डॉ. विजय कुमार जैन	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	४९	१-३	१९९८	१४-२७
जैन दर्शन और कबीर : एक तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. साध्वी मंजुश्री	तुलनात्मक	४९	१-३	१९९८	२८-४३
जैन और बौद्ध ध्यान-पद्धति : एक अनुशीलन	डॉ. सुधा जैन	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	४९	१-३	१९९८	४४-५३
स्वयं की अनेकान्तमयी दृष्टि से तनावमुक्ति	डॉ. पारसमल अग्रवाल	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान-मीमांसा	४९	१-३	१९९८	५४-६४
खरतरगच्छ-पिपलक शाखा का इतिहास	डॉ. शिवप्रसाद	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	४९	१-३	१९९८	६७-९
कीर्तिकौमुदी में प्रयुक्त छन्द	डॉ. अशोक कुमार सिंह	आगम और साहित्य	४९	१-३	१९९८	८३-९०
मुनिराज वन्दना बत्तीसी	डॉ. (श्रीमती) मुन्नी जैन	आगम और साहित्य	४९	१-३	१९९८	९१-१००

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
बीसवीं सदी के जैन आन्दोलन	डॉ. कमलेश कुमार जैन	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	१०	१-३	१९९९	६०-७०
जैन-विद्या के विकास हेतु रचनात्मक कार्यक्रम	दुलीचन्द्र जैन	विविध	५०	१-३	१९९९	७१-७८
साहु सरणं पवञ्जामि	पानमल सुराणा	आगम और साहित्य	५०	१-३	१९९९	७९-८२
कांगड़ा के ऐतिहासिक किले	श्री महेन्द्र कुमार 'मस्त'	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५०	१-३	१९९९	८३-८४
एलोरा की जैन सम्मदा	आनन्द प्रकाश श्रीवास्तव	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५०	१-३	१९९९	८५-८७
तपागच्छ-विजयसंविग्न शाखा का इतिहास	शिवप्रसाद	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५०	१-३	१९९९	८८-१०६
नागपुरीयतपागच्छ का इतिहास	शिवप्रसाद	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५०	१-३	१९९९	१०७-१२१
The Image of Indian Ethology	Rajamal Jain	आगम एवं साहित्य	५०	१-३	१९९९	१२२-१३६
आचारांग के कुछ महत्वपूर्ण सूत्र : एक विश्लेषण	डॉ. सुरेन्द्र वर्मा	आगम एवं साहित्य	५०	४-६	१९९९	१-१०
प्रेक्षाध्यान एवं भावातीत ध्यान : एक चिन्तन	डॉ. सुधा जैन	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५०	४-६	१९९९	११-१६
यशस्तिलक चम्पू में आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त सम्बन्धी विषय	आचार्य राजकुमार जैन	आगम एवं साहित्य	५०	४-६	१९९९	१७-२६
प्राकृत वैद्यक (प्राकृत भाषा की आयुर्वेदीय अज्ञात जैन रचना)	कुन्दन लाल जैन	आगम एवं साहित्य	५०	४-६	१९९९	२७-५१

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
आचार्य हरिभद्रसूरि प्रणीत 'उपदेशपद एक अध्ययन' डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी' श्री जिनेन्द्र वर्णीजी द्वारा प्रणीत 'पदार्थ विज्ञान' और डॉ. कमलेश कुमार जैन उसकी विवेचन शैली	डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी' डॉ. कमलेश कुमार जैन	आगम एवं साहित्य दर्शन-तत्त्व मीमांसा व ज्ञान-मीमांसा	५०	४-६	१९९९	५२-६६
गुरु का स्वरूप : गुरुत्वविनिश्चय के विशेष सन्दर्भ में	डॉ. विजय कुमार जैन	दर्शन-तत्त्व मीमांसा व ज्ञान मीमांसा	५०	४-६	१९९९	६७-७२
महावीर के सिद्धान्त : वर्तमान परिप्रेक्ष्य	डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५०	४-६	१९९९	७३-८५
शर्की-कालीन हिन्दी साहित्य के विकास में बनारसी डॉ. राजदेव दुबे दास का अवदान	डॉ. राजदेव दुबे	आगम एवं साहित्य	५०	४-६	१९९९	८६-९०
प्राचीन भारत के प्रमुख तीर्थस्थल : बौद्ध और जैन धर्म के विशेष सन्दर्भ में (शोधप्रबन्ध-सार)	राजेश कुमार	इतिहास, पुरातत्त्व एवं साहित्य	५०	४-६	१९९९	९६-१०१
जैन दर्शन में सृष्टि की अवधारणा	अतुल कुमार प्रसाद सिंह	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५०	४-६	१९९९	१०२-१११
विधिपक्ष अपरनाम अंचलगच्छ (अचलगच्छ) का संक्षिप्त इतिहास	डॉ. शिवप्रसाद	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५०	४-६	१९९९	११२-१५३
आधुनिक सन्दर्भों में तीर्थकर-उपदेशों की प्रासंगिकता	अनिल कुमार	समाज एवं संस्कृति	५०	४-६	१९९९	१५४-१५८
Vasanta in Prakrit Literature	Dr. Veneemadhavashastri	आगम एवं साहित्य	५०	४-६	१९९९	१५९-१७७

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
पर्युषण : सही दृष्टि देने वाला महापर्व	प्रो. भागवन्द्र जैन	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५०	७-९	१९९९	१-९
तीर्थंकर ऋषभदेव व उनकी सांस्कृतिक परम्परा	प्रो. भागवन्द्र जैन	'भास्कर' समाज एवं संस्कृति	५०	७-९	१९९९	१०-२६
महावीर और उनकी परम्परा	प्रो. भागवन्द्र जैन	'भास्कर' समाज एवं संस्कृति	५०	७-९	१९९९	२७-६३
क्रोध का अभाव ही क्षमा है	प्रो. भागवन्द्र जैन	'भास्कर' धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५०	७-९	१९९९	६४-७०
जीवन की सरलता ही मृदुता है	प्रो. भागवन्द्र जैन	'भास्कर' धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५०	७-९	१९९९	७१-७६
जीवन की निष्कपटता ही ऋजुता है	प्रो. भागवन्द्र जैन	'भास्कर' धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५०	७-९	१९९९	७७-८१
जीवन की निर्मलता ही शुचिता है	प्रो. भागवन्द्र जैन	'भास्कर' धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५०	७-९	१९९९	८२-८७
सत्य : साधना की ओर बढ़ता पदचाप	प्रो. भागवन्द्र जैन	'भास्कर' धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५०	७-९	१९९९	८८-९३
मन पर नकेल लगाना ही संयम है	प्रो. भागवन्द्र जैन	'भास्कर' धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५०	७-९	१९९९	९४-९९
स्वस्थ होना ही उत्तम तप है	प्रो. भागवन्द्र जैन	'भास्कर' धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५०	७-९	१९९९	१००-१११

लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
लेख					
राग-द्वेष भाव का विसर्जन ही त्याग है	प्रो. भागचन्द्र जैन 'भास्कर'	५०	७-९	१९९९	११२-११७
निर्ममत्व की ओर बढ़ना ही आर्किचन्य है	प्रो. भागचन्द्र जैन 'भास्कर'	५०	७-९	१९९९	११८-१२२
आत्मा में रमण करना ही ब्रह्मचर्य है	प्रो. भागचन्द्र जैन 'भास्कर'	५०	७-९	१९९९	१२३-१२९
भाषाना विकासमां प्राकृत-पालिभाषानो फालो	पं. बेचरदास दोशी	५०	७-९	१९९९	१३०-१४०
जैन परंपरानुं अपभ्रंश साहित्यमां प्रदान	प्रो. हरिवल्लभ चु. भायाणी	५०	७-९	१९९९	१४१-१५०
Jaina Festivals	Padmanabh S. Jaini	५०	७-९	१९९९	१५१-१५९
Fear of Food? Jaina attitudes on Eating	Padmanabh S. Jaini	५०	७-९	१९९९	१६०-१७४
जैन अलङ्कार साहित्य	पं. अमृतलाल शाल्मी	५०	१०-१२	१९९९	१-११
वाग्भट्टालङ्कार	पं. अमृतचन्द्र शाल्मी	५०	१०-१२	१९९९	१२-१७
भट्टाकलाङ्कदेव रचित 'तत्त्वार्थवार्तिक'	पं. अमृतचन्द्र शाल्मी	५०	१०-१२	१९९९	१८-२४
आचार्य अजितसेन और उनकी अमरकृति	पं. अमृत शाल्मी	५०	१०-१२	१९९९	२५-३१
'अलङ्कारचिन्तामणि:'					
चन्द्रप्रभचरित एवं महाकवि वीरनन्दी	पं. अमृतचन्द्र शाल्मी	५०	१०-१२	१९९९	३२-७१
महाकवि अर्हदास और उनकी रचनाएँ	पं. श्री अमृतलाल शाल्मी	५०	१०-१२	१९९९	७२-७५
काव्य-कल्पलता और कवि-कल्पलता	पं. अमृतचन्द्र शाल्मी	५०	१०-१२	१९९९	७६-७७

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
भक्तामर स्तोत्र: एक विवेचन	पं. अमृतचन्द्र शास्त्री	आगम एवं साहित्य	५०	१०-१२	१९९९	७८-८७
तत्त्वसिद्धि और उसकी वचनिका: एक विवेचन	पं. अमृतचन्द्र शास्त्री	आगम एवं साहित्य	५०	१०-१२	१९९९	८८-९७
नेमिनिर्वाण : एक अध्यायन	पं. अमृतचन्द्र शास्त्री	आगम एवं साहित्य	५०	१०-१२	१९९९	९८-१०५
अप्रतिहत शक्ति भगवान् महावीर	पं. अमृतचन्द्र शास्त्री	समाज एवं संस्कृति	५०	१०-१२	१९९९	१०६-११२
भगवान् महावीर की देन	पं. अमृतचन्द्र शास्त्री	समाज एवं संस्कृति	५०	१०-१२	१९९९	११३-११५
काशी के कतिपय ऐतिहासिक तथ्य	पं. अमृतचन्द्र शास्त्री	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५०	१०-१२	१९९९	११६-११८
अतिशय क्षेत्र पपौरा	पं. अमृतचन्द्र शास्त्री	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५०	१०-१२	१९९९	११९-१२१
भोजन और उसका समय	पं. अमृतचन्द्र शास्त्री	विविध	५०	१०-१२	१९९९	१२२-१२४
उपकारी पशुओं की यह दुर्दशा	पं. अमृतचन्द्र शास्त्री	समाज एवं संस्कृति	५०	१०-१२	१९९९	१२५-१२८
महान्	पं. अमृतचन्द्र शास्त्री	समाज एवं संस्कृति	५०	१०-१२	१९९९	१२९-१३०
पूज्य श्री तुलसी गणी	पं. अमृतचन्द्र शास्त्री	समाज एवं संस्कृति	५०	१०-१२	१९९९	१२९-१३०
श्री मुदितमुनि : अभिनन्दनपत्रम्	पं. अमृतचन्द्र शास्त्री	समाज एवं संस्कृति	५०	१०-१२	१९९९	१३०-१३१
अभिनन्दन पत्रम् : साध्वीप्रमुखा श्रीकनकप्रभा	पं. अमृतचन्द्र शास्त्री	समाज एवं संस्कृति	५०	१०-१२	१९९९	१३१-१३२
पं. अमृतचन्द्र शास्त्री जी विद्वानों की दृष्टि में	पं. अमृतचन्द्र शास्त्री	विविध	५०	१०-१२	१९९९	१३३-१४०
श्री पंचासरा पार्श्वनाथ मंदिर विषेना केटलाक ऐतिहासिक उल्लेखो	प्रो. भोगीलाल ज. साडेसरा	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५०	१०-१२	१९९९	१४१-१४८

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
गुजरतनुं प्रथम इतिहासकाव्य	प्रो. जयन्त ठाकर	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५०	१०-१२	१९९९	१४९-५७
Bandha-Karma-Moksa and Divinity in Jainism	Dr. Mukul Raj Mehta	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५०	१०-१२	१९९९	१५८-१६९
जैन दर्शन में निक्षेप : एक विवेचन	डॉ. श्रीप्रकाश पाण्डेय	दर्शन-तत्त्वमीमांसा और ज्ञान मीमांसा	५१	१-६	२०००	१-७
जैन ज्ञान-मीमांसा-एक अवलोकन	डॉ. विजय कुमार	दर्शन-तत्त्वमीमांसा और ज्ञानमीमांसा	५१	१-६	२०००	८-२९
शून्निंग महोदय द्वारा संपादित आचारांग और इसिभासियाई की भाषा की तुलना	डॉ. के आर. चन्द्र	आगम और साहित्य	५१	१-६	२०००	३०-३२
सम्यक्त्वपञ्चीसी	डॉ. मुन्नी जैन	आगम और साहित्य	५१	१-६	२०००	३४-४५
महाभारत और आदि-पुराण में शिवतत्त्व	डॉ. पुष्पलता जैन	आगम और साहित्य	५१	१-६	२०००	४६-५०
खरतरगच्छ-लघुशाखा का इतिहास	डॉ. शिवप्रसाद	इतिहास, पुरातत्त्व और कला	५१	१-६	२०००	५१-६२
महावीर निर्वाण भूमि पावा	डॉ. ओम प्रकाश श्रीवास्तव	इतिहास, पुरातत्त्व और कला	५१	१-६	२०००	६३-६५
आदिपुराण में विश्व सौन्दर्य	डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव	आगम और साहित्य	५१	१-६	२०००	६६-७५
'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में अहिंसा के तत्त्व	डॉ. मधु अग्रवाल	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५१	१-६	२०००	७६-७९

लेखक	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
महावीर का साधना-मार्ग	श्री दुलीचन्द जैन	धर्म, साधना, नीति और आचार	५१	१-६	२०००	८०-८६
तंत्र-मंत्र एवं साधना विधि	श्री महेन्द्र कुमार जैन	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५१	१-६	२०००	८७-९३
भारंड पक्षी	श्री भैरवलाल नाहटा	धर्म, साधना, नीति, एवं आचार	५१	१-६	२०००	९४-९८
अहिंसा की परिधि में पर्यावरण सन्तुलन	डॉ. पुष्पलता जैन	धर्म, साधना, नीति, एवं आचार	५१	१-६	२०००	९९-१०५
अमरकोश में शिवतत्व	श्री ओम प्रकाश सिंह	आगम और साहित्य	५१	१-६	२०००	१०६-१०८
स्व. श्री शान्तिभाई बनमाली सेठ : एक परिचय	श्री ओम प्रकाश सिंह	विविध	५१	१-६	२०००	१०९-११०
आदर्श परिवार की संकल्पना : जैन धर्मशास्त्रों के परिप्रेक्ष्य में	प्रो. भागवन्द्र जैन 'भास्कर'	समाज एवं संस्कृति	५१	१-६	२०००	१११-११३
हरिभद्रसूरिनुं ज्ञानतत्त्वचिन्तन	प्रो. रसिकलाल छोटालाल पारिख	आगम एवं साहित्य	५१	१-६	२०००	११४-१२३
Technical Science in Jaina Canons	Dr. N.L. Jain	आगम एवं साहित्य	५१	१-६	२०००	१२४-१२९
Divine Essence of Arhat and Tīrthānkara	Dr. M.R. Mehta	समाज एवं संस्कृति	५१	१-६	२०००	१३०-१३६
Anekasandhānākāvya	Dr. Ashok K. Singh	आगम और साहित्य	५१	१-६	२०००	१३७-१५०
Jaina Version of Mahābhārat	Prof. B.C. Jain	आगम और साहित्य	५१	१-६	२०००	१५१-१६५
Presidential Address of Professor Y.C. Simhadri	Prof. B.C. Jain	समाज एवं संस्कृति	५१	१-६	२०००	१६६-१७०

लेखक	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
यशोगाथा	आचार्य राजयश विजय जी	समाज एवं संस्कृति	५१	७-९	२०००	१-२०
श्रमण संस्कृति के गायक लब्धिसूरि	श्री रावलमल जैन 'मणि'	समाज एवं संस्कृति	५१	७-९	२०००	२१-२३
साधना, ज्ञानार्जन एवं लौकिक सेवा से पूर्ण जीवन	डॉ. के. सी. जैन	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५१	७-९	२०००	२४-३२
लब्धिसूरि की रचना में भक्तिसौरभ	श्री रावलमल जैन 'मणि'	आगम एवं साहित्य	५१	७-९	२०००	३३-४०
समाज को साम्प्रदायिकता से बचाना होगा	आचार्य श्री राजयश विजय जी	समाज एवं संस्कृति	५१	७-९	२०००	४१-४२
आचार्यश्री विजयलब्धिसूरिजी महाराज : एक अविस्मरणीय व्यक्तित्व	डॉ. गंगाचरण त्रिपाठी	समाज एवं संस्कृति	५१	७-९	२०००	४३-४७
लब्धिभक्तामरस्तोत्रम्	स्राध्वी हंसश्री	आगम एवं साहित्य	५१	७-९	२०००	४८-५४
पंचमकालामृतम्	पंन्यास प्रवर श्रीमुक्ति विजय गणि	आगम एवं साहित्य	५१	७-९	२०००	५५-५६
गुरुदेव महान्	आचार्यश्री जयंतसूरि जी म.सा.	समाज एवं संस्कृति	५१	७-९	२०००	५७
प्रभुता से प्रभुता दूर: लघुता से प्रभुता हजूर	मुनिश्री कलहंस विजय जी	समाज एवं संस्कृति	५१	७-९	२०००	५८-५९
महान् विभूति के साथ बीते क्षण (संस्मरण)	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५१	७-९	२०००	६०-६८
सम्यक् प्रमाण (कविता)	पंन्यास वारिसेण विजय	आगम और साहित्य	५१	७-९	२०००	६९
महात्मा लब्धिसूरि देव (कविता)	श्री सुरेश 'सरल'	आगम एवं साहित्य	५१	७-९	२०००	७०
पूज्यश्री के प्रवचन	श्री मूलचन्द बोधरा 'कोविद'	समाज एवं संस्कृति	५१	७-९	२०००	७१-७३

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
लब्धिवार्णी	श्री चैनराज लूणिया	समाज एवं संस्कृति	५१	७-९	२०००	७४-७७
चौबीस तीर्थंकर भगवान् के चौबीस स्तवन	श्री लब्धिसूरि	समाज एवं संस्कृति	५१	७-९	२०००	७८-११९
आचार्य लब्धिसूरिकृत कतिपय ग्रन्थों की नामावली		आगम एवं साहित्य	५१	७-९	२०००	१२०
भद्रबाहु सम्बन्धी कथानकों का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. सागरमल जैन	आगम और साहित्य	५१	१०-१२	२०००	१-२३
'कौमुदीमित्रानन्द' में प्रतिपादित आचार्य रामचन्द्रसूरि की जैन जीवन-दृष्टि	डॉ. सागरमल जैन	समाज एवं संस्कृति	५१	१०-१२	२०००	२४-२९
अंगविज्जा और नमस्कार महामन्त्र की विकास-यात्रा	डॉ. सागरमल जैन	इतिहास एवं पुरातत्व कला	५१	१०-१२	२०००	३०-३६
जीवसमास : एक परिचय	डॉ. सागरमल जैन	दर्शन-तत्त्वमीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा	५१	१०-१२	२०००	३७-६६
जैन विद्या के अध्ययन की तकनीक	डॉ. सागरमल जैन	आगम एवं साहित्य	५१	१०-१२	२०००	६७-७५
कषायमुक्ति : किलमुक्तिरेव	डॉ. सागरमल जैन	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५१	१०-१२	२०००	७६-९३
स्वाध्याय की मणियाँ	डॉ. सागरमल जैन	आगम और साहित्य	५१	१०-१२	२०००	९४-१०१
आचार्य हरिभद्रकृत श्रावकधर्मविधिप्रकरण : एक परिचय	डॉ. सागरमल जैन	आगम एवं साहित्य	५१	१०-१२	२०००	१०२-१०७
अप्रभ्रंश के महाकवि स्वयम्भू : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. सागरमल जैन	समाज एवं संस्कृति	५१	१०-१२	२०००	१०८-११६
जैन परम्परा में काशी	डॉ. सागरमल जैन	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५१	१०-१२	२०००	११७-१२६

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
पुण्य की उपादेयता का प्रश्न	डॉ. सागरमल जैन	समाज एवं संस्कृति	५१	१०-१२	२०००	१२७-१४५
Introduction to Dr. Charlotte Krause :	Dr. Sagarmal Jain	समाज एवं संस्कृति	५१	१०-१२	२०००	१४६-१५८
Her life and literature	Dr. Sagarmal Jain	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५१	१०-१२	२०००	१५९-१६२
Foreword : Aparigraha :	Dr. Sagarmal Jain	दर्शन-तत्त्व-मीमांसा एवं मीमांसा	५१	१०-१२	२०००	१६३-१७५
The Humane Solution	Dr. Sagarmal Jain	दर्शन-तत्त्व मीमांसा	५२	१-३	२००१	१-१०
Spiritual Foundation of Jainism	डॉ. श्रीप्रकाश पाण्डेय	दर्शन-तत्त्व मीमांसा और ज्ञान मीमांसा	५२	१-३	२००१	११-१६
अनेकान्तवाद : मूल्यपरक शिक्षा के यन्त्र के रूप में	डॉ. कमलेश कुमार जैन	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५२	१-३	२००१	१७-२०
जैन तत्त्व चिन्तन की वैज्ञानिकता	श्री जितेन्द्र कुमार सिंह	आगम और साहित्य	५२	१-३	२००१	२१-२९
वराङ्गचरित : एक महाकाव्य	डॉ. प्रेमचन्द्र जैन	आगम एवं साहित्य	५२	१-३	२००१	३०-३८
अपभ्रंश साहित्य में पर्यावरण चेतना	डॉ. संगीता मेहता	समाज एवं संस्कृति	५२	१-३	२००१	३९-५६
पर्यावरण चिन्तन : जैन वाङ्मय के सन्दर्भ में	डॉ. सोहनकृष्ण पुरोहित	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५२	१-३	२००१	५७-६०
जालोर मण्डल में जैन धर्म और अध्ययन सम्बन्धी स्त्रोत	डॉ. शिवप्रसाद	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५२	१-३	२००१	५७-६०
सादड़ी के प्रतिमालेख में उल्लिखित हेमलिलक	डॉ. शिवप्रसाद	विषय	५२	१-३	२००१	५७-६०
सूरि कौन?						

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
राष्ट्रोत्थान में प्रागैतिहासिककालीन जैन महिलाओं का योगदान	डॉ. पुष्पलता जैन	समाज एवं संस्कृति	५२	१-३	२००१	६१-६७
रसशास्त्र के विकास में जैनाचार्यों का योगदान	कु. अंजू श्रीवास्तव	समाज एवं संस्कृति	५२	१-३	२००१	६८-७४
धम्मिलकुमारचरित्र	श्री भँवरलाल नाहटा	आगम और साहित्य	५२	१-३	२००१	७५-९०
दीर्घनिकाय में व्यक्त सामाजिक परिवेश	डॉ. दीनानाथ शर्मा	समाज और संस्कृति	५२	१-३	२००१	९१-९४
गुजरातनी केटलीक प्राचीन जिनमूर्तियों सिद्धशारस्वताचार्य अमरचन्द्र सूरि	श्री साराभाई मणिलाल नवाब इतिहास, पुरातत्व एवं कला	समाज और संस्कृति	५२	१-३	२००१	९५-९६
The influence of Swayambhūdeva's Pāṇmacariu on Puspādanta's Rāma-story in the Mahāpurāṇa	Miss. Eva De Clereq	समाज एवं साहित्य	५२	१-३	२००१	१०३-१२१
The Jaina way of life	Duli chand Jain	समाज और संस्कृति	५२	१-३	२००१	१२२-१२९
The Veda and Indian Philosophy	Dr. Kireet Joshi	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५२	१-३	२००१	१३०-१४०
Jaina Dūtakāvyā	Dr. Ashok Kumar Singh	आगम एवं साहित्य	५२	१-३	२००१	१४१-१५३
द्रव्य, गुण और पर्याय का पारस्परिक सम्बन्ध : (सिद्धसेन दिवाकरकृत 'सन्मतिप्रकरण' के विशेष सर्वदर्भ में)	डॉ. श्रीप्रकाश पाण्डेय	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५२	४-९	२००१	१-१५
अनेकान्तवाद और उसकी समसामयिकता	डॉ. अजय कुमार	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५२	४-९	२००१	१६-१९

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
वैशाली	आचार्य विजयेन्द्र सूरी	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५२	४-९	२००१	२०-४९
महावीर के जन्म स्थान पर नया प्रकाश	अजय कुमार सिन्हा	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५२	४-९	२००१	५०-५४
सरस्वती	डॉ. अशोक कुमार सिंह	विविध	५२	४-९	२००१	५५-६२
जैन धर्म के चतुर्विध संघों का पारस्परिक सहदायत्व	डॉ. अरुण प्रताप सिंह	समाज और संस्कृति	५२	४-९	२००१	६३-७३
खरतरगच्छ-कीर्तिरत्नसूरीशाखा का संक्षिप्त इतिहास	डॉ. शिवप्रसाद	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५२	४-९	२००१	७४-८८
देवलोक व तिर्यञ्च में नाग	श्री भँवरलाल नाहटा	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५२	४-९	२००१	८९-११२
जैन धर्म, संस्कृति व कला के विकास में गंग, चालुक्य और राष्ट्रकूट राजवंशों का योगदान	प्रो. भागचन्द्र जैन	आगम और साहित्य	५२	४-९	२००१	११३-१२८
भारतीय भाषाओं का प्रथम व्यंग्य उपन्यास-धूर्तौख्यान	प्रो. श्याम सुन्दर घोष	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५२	४-९	२००१	१२९-१३३
आधुनिक युग में अहिंसा की प्रासंगिकता	दुलीचंद जैन	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा	५२	४-९	२००१	१३४-१४३
शोध-प्रबन्धसार	श्रीमती शारदा सिंह		५२	४-९	२००१	१४४-१४७

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
शोध-प्रबन्धसार	श्रीमती किरण श्रीवास्तव	आगम और साहित्य	५२	४-९	२००१	१४८-१५१
गुजराती साहित्यमां जैन भक्तिकाव्यो	पन्नालाल रसिकलाल शाह	आगम एवं साहित्य	५२	४-९	२००१	१५२-१६३
School of Jaina Philosophy	दर्शन, तत्त्व मीमांसा	५२	२००१	१६४-१६९		
Rightful exposition of Jainism in the west	Dr. N.L. Jain	एवं ज्ञान मीमांसा	५२	४-९	२००१	१७०-१७९
Samyakdarśana	J.P. Jain 'Sadhak'	दर्शन, तत्त्व मीमांसा	५२	४-९	२००१	१८०-१८४
अर्धमागधी आगम साहित्य : कुछ सत्य कुछ तथ्य	डॉ. सागरमल जैन	एवं ज्ञान मीमांसा	५२	१०-१२	२००१	१-९
जैन आगमों की मूल-भाषा : अर्धमागधी या शौरसेनी	डॉ. सागरमल जैन	आगम एवं साहित्य	५२	१०-१२	२००१	१०-३६
प्राकृत विद्या में प्रो. टॉटिया जी के नाम से प्रकाशित उनके व्याख्यान के विचार-बिन्दुओं की समीक्षा	डॉ. सागरमल जैन	विविध	५२	१०-१२	२००१	३७-४७
शौरसेनी प्राकृत के सम्बन्ध में प्रो. भोलाशंकर व्यास की स्थापनाओं की समीक्षा	डॉ. सागरमल जैन	आगम एवं साहित्य	५२	१०-१२	२००१	४८-५६
अशोक के अभिलेखों की भाषा : मागधी या शौरसेनी	डॉ. सागरमल जैन	आगम और साहित्य	५२	१०-१२	२००१	५७-६५
क्या ब्राह्मी लिपि में 'न' और 'ण' के लिये एक ही आकृति थी?	डॉ. सागरमल जैन	आगम एवं साहित्य	५२	१०-१२	२००१	६६-७४
ओड्मागधी प्राकृत : एक नया शृङ्गा	डॉ. सागरमल जैन	आगम और साहित्य	५२	१०-१२	२००१	७५-८३

लेखक	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
भारतीय दार्शनिक चिन्तन में निहित अनेकान्त	डॉ. सागरमल जैन	दर्शन-तत्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५२	१०-१२	२००१	८४-१०२
जैन दर्शन की पर्याय की अवधारणा का समीक्षात्मक विवेचन	डॉ. सागरमल जैन	दर्शन-तत्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५२	१०-१२	२००१	१०३-११९
प्रवचनसरोद्धार : एक अध्ययन	डॉ. सागरमल जैन	आगम एवं साहित्य	५२	१०-१२	२००१	१२०-१९०
स्व. भैरवलालजी नाहटा : एक युगपुरुष एवं अनुपम प्रेरणा स्रोत (संक्षिप्त परिचय)	डॉ. सागरमल जैन	समाज एवं संस्कृति	५३	१-६	२००२	१-१२
डॉ. सागरमल जैन द्वारा गुणस्थान-सिद्धान्त की गवेषणा	डॉ. धर्मचन्द्र जैन	दर्शन-तत्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५३	१-६	२००२	१३-२४
पार्श्वनाथ के सिद्धान्त : दिगम्बर-श्वेताम्बर दृष्टि	प्रो. सुदर्शनलाल जैन	समाज एवं संस्कृति	५३	१-६	२००२	२५-३२
हिन्दी काव्य परम्परा में अपभ्रंश महाकाव्यों का महत्त्व	साध्वी डॉ. मधुबाला	आगम एवं साहित्य	५३	१-६	२००२	३३-३८
भारतीय आर्य भाषाओं की विकास-यात्रा में अपभ्रंश का स्थान	साध्वी डॉ. मधुबाला	आगम एवं साहित्य	५३	१-६	२००२	३९-४३
प्रकीर्णक साहित्य : एक अवलोकन	डॉ. अतुल कुमार प्रसाद सिंह	आगम एवं साहित्य	५३	१-६	२००२	४४-६२
जैन संस्कृति में पर्यावरण चेतना	डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव	आगम एवं साहित्य	५३	१-६	२००२	६३-६७
पादलिप्त सूरिकृत 'तरंगवईकहा' (तरंगवती कथा)	श्री वेदप्रकाश गर्ग	आगम एवं साहित्य	५३	१-६	२००२	६८-७०
नाट्यशास्त्र और अभिनवभारती में शान्तरस की अभिनेयता प्रतिपादन और विश्वशास्त्रि में इसकी उपादेयता	डॉ. मधु अग्रवाल	आगम एवं साहित्य	५३	१-६	२००२	७१-७९

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
मोक्ष मार्ग में सम्यग्दर्शन की भूमिका	डॉ. कमलेश कुमार जैन	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५३	१-६	२००२	८०-८६
'समराइचक्कहा' में व्यवसायों का सामाजिक आधार	राघवेन्द्र प्रताप सिंह	समाज एवं संस्कृति	५३	१-६	२००२	८७-९५
जैन दर्शन में परमात्मा का स्वरूप एवं स्थान (शोध प्रबन्ध सार)	श्रीमती कल्पना	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५३	१-६	२००२	९६-९९
जैनागमों में भारतीय शिक्षा के मूल्य	दुलीचन्द जैन	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५३	१-६	२००२	१००-१०६
गाँधी चिन्तन में अहिंसा एवं उसकी प्रासंगिकता (जेहादी हिंसा के सन्दर्भ में)	राजेन्द्र सिंह 'गुर्जर'	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५३	१-६	२००२	१०७-११२
खरतरगच्छ-आद्यपक्षीयशाखा का इतिहास	डॉ. शिवप्रसाद	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५३	१-६	२००२	११३-१२१
Jain Campū Literature	Dr. Ashok Kumar Singh	आगम एवं साहित्य	५३	१-६	२००२	१२२-१३१
Misunderstanding vis-a vis understanding with reference to Jainism	Dr. Rajjan Kumar	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५३	१-६	२००२	१३२-१४५
तीर्थंकर अरिष्टनेमि	डॉ. श्रीप्रकाश पाण्डेय	समाज एवं संस्कृति	५३	७-१२	२००२	१-११
आचार्य हरिभद्र की योगदृष्टियाँ : एक विवेचन	डॉ. सुधा जैन	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५३	७-१२	२००२	१२-२१
आचार्य हरिभद्रसूरि प्रणीत उपदेशपद : एक अध्ययन	डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी'	आगम एवं साहित्य	५३	७-१२	२००२	२२-३६

लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
जैनाचार्यों का छन्द-शास्त्र को योगदान	आगम एवं साहित्य	५३	७-१२	२००२	३७-५१
‘अग्रवाल’ शब्द की प्राचीनता विषयक एक और प्रमाण	विविध	५३	७-१२	२००२	५२-५४
अर्बुदमण्डल में जैन धर्म	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५३	७-१२	२००२	५५-६०
इतिहास की गौरवपूर्ण विरासत : काँगड़ा के जैन मन्दिर श्री महेश्वर कुमार ‘मस्त’	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५३	७-१२	२००२	६१-६२
अयोध्या से प्राप्त अभिलेख में उल्लिखित नयचन्द्र रम्भामंजरी के कर्ता नहीं	आगम एवं साहित्य	५३	७-१२	२००२	६३-६४
खरतरगच्छ-रुद्रपल्लीय शाखा का इतिहास	इतिहास पुरातत्त्व एवं कला	५३	७-१२	२००२	६५-९३
जैनागमों में शिक्षा का स्वरूप	आगम एवं साहित्य	५३	७-१२	२००२	९४-१०५
जैन आगम साहित्य में नरक की मान्यता	आगम एवं साहित्य	५३	७-१२	२००२	१०६-११०
सामाजिक-राजनैतिक समस्याओं का समाधान : अनेकान्त	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५३	७-१२	२००२	१११-११५
जैन संस्थाएँ एवं समाज में उनका योगदान	समाज एवं संस्कृति	५३	७-१२	२००२	११६-१२४
Jaina Kośa Literature	आगम एवं साहित्य	५३	७-१२	२००२	१२५-१५९
जैन साहित्य और संस्कृति में वाराणसी मंडल	आगम एवं साहित्य	५४	१-३	२००३	१-१०
जैन पुराणों में वर्णित जैन संस्कारों का जैनेतर संस्कारों का से तुलनात्मक अध्ययन	समाज और संस्कृति	५४	१-३	२००३	११-२९

Dr. Ashok Kumar Singh

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
स्थानकवामी सम्प्रदाय के छोटे पृथ्वीचन्द्र जी	डॉ. विजय कुमार झा	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५४	१-३	२००३	३०-४२
महाराज की परम्परा का इतिहास धर्म और धर्मान्यता	डॉ. विशिष्ठ नारायण सिन्हा	धर्म, साधना नीति एवं आचार	५४	१-३	२००३	४३-५०
धूलियाँ से प्राप्त शीतलनाथ की विशिष्ट प्रतिमा	प्रो. सागरमल जैन	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५४	१-३	२००३	५१-५४
खरतरगच्छ जिनभद्रपुरि शाखा का इतिहास	डॉ. शिवप्रसाद	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५४	१-३	२००३	५५-७६
Catalogues of Jaina Manuscripts	Dr. Ashok Kumar Singh	आगम एवं साहित्य	५४	१-३	२००३	७७-११२
जैनधर्म और पर्यावरण संरक्षण (पार्श्वनाथ विद्यापीठ द्वारा आयोजित निबन्ध प्रतियोगिता २००१ में पुरस्कृत आलेख)	डॉ. अर्चना श्रीवास्तव	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५४	४-६	२००३	१-१२
जैनधर्म और पर्यावरण संरक्षण	श्री छैल सिंह राठौर	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५४	४-६	२००३	१३-२१
जैनधर्म और पर्यावरण संरक्षण	श्री अमित बहल	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५४	४-६	२००३	२२-३०
जैनधर्म और पर्यावरण संरक्षण	कु. रेनू गांधी	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५४	४-६	२००३	३१-३५
जैनधर्म और पर्यावरण संरक्षण	श्री रोहित गांधी	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५४	४-६	२००३	३६-४१
जैनधर्म और पर्यावरण संरक्षण	कु. निधि जैन	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५४	४-६	२००३	४२-४६

लेखक	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
जैनधर्म और पर्यावरण संरक्षण (पार्श्वनाथ विद्यापीठ दीपिका गांधी द्वारा आयोजित निबन्ध प्रतियोगिता २००१ हेतु प्राप्त अन्य विशिष्ट आलेख)	डॉ. श्याम सुन्दर शर्मा	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५४	४-६	२००३	४७-५६
जैनधर्म और पर्यावरण संरक्षण	श्री कमलिनी बोकारिया	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५४	४-६	२००३	५७-६१
जैनधर्म और पर्यावरण संरक्षण	श्री मनोरमा जैन	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५४	४-६	२००३	६२-७२
जैनधर्म और पर्यावरण संरक्षण	श्री देवेन्द्र कुमार हिरण	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५४	४-६	२००३	७३-८१
जैनधर्म और पर्यावरण संरक्षण	कु. अल्का सुराणा	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५४	४-६	२००३	८२-९०
जैनधर्म और पर्यावरण संरक्षण	श्रीमती सुधा जैन	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५४	४-६	२००३	९१-९३
जैन धर्म की ऐतिहासिक विकास यात्रा	प्रो. सागरमल जैन	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५४	७-९	२००३	९४-१००
जैनयोग : एक दार्शनिक अनुशीलन	अनिल कुमार सोनकर	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५४	७-९	२००३	१-५३

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में वस्तु-स्वातन्त्र्य एवं द्रव्य की अवधारणा	कु. अल्पना जैन	दर्शन-तत्त्व-मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५४	७-१	२००३	६२-७१
भगवती आराधना में समाधिमरण के तत्त्व	डॉ. सुधीर कुमार राय	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५४	७-१	२००३	७२-८०
वज्जालागं का काव्यात्मक मूल्य	रजनीश शुक्ल	आगम एवं साहित्य	५४	७-१	२००३	८१-९३
पूर्वमध्यकाल में स्त्रियों की दशा (त्रिशुष्टिशलाकापुरुषचरित के सन्दर्भ में)	डॉ. उमेश चन्द्र श्रीवास्तव	समाज एवं संस्कृति	५४	७-१	२००३	९४-९७
भारतीय कला को बुद्ध का अवदान	प्रो. अंगने लाल	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५४	७-१	२००३	९८-१०४
एलोरा की महावीर मूर्तियाँ	डॉ. आनन्द प्रकाश श्रीवास्तव	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५४	७-१	२००३	१०५-११०
खरतरगाच्छ-बेगड़ शाखा का इतिहास	डॉ. शिवप्रसाद	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५४	७-१	२००३	१११-१२३
Myth of Lord Mahavira's Embryo-Transfer in Jaina scriptures	Mangilal Bhutodia		५४	७-१	२००३	१२४-१३२
Religious Aspect on Non-violence	Dr. B.N. Sinha	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५४	७-१	२००३	१३३-१५६
जैन दर्शन में द्रव्यदृष्टि एवं पर्यावरणीय नीतिशास्त्र का पारस्परिक सम्बन्ध	डॉ. रामकुमार गुप्त	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५४	१०-१२	२००३	१-५

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
जैन एवं बौद्ध भिक्षुणियों के आहार सम्बन्धी नियम	अंशु श्रीवास्तव	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५४	१०-१२	२००३	६-९
दिगम्बर जैन जातियाँ : उद्भव एवं विकास	कुसुम सोगानी	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५४	१०-१२	२००३	१०-२५
सिद्धसेन दिवाकर का जैन दर्शन को अवदान वनस्पति और जैन आहार शास्त्र	डॉ. किरण श्रीवास्तव डॉ. नन्दलाल जैन	समाज एवं संस्कृति धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५४	१०-१२	२००३	२६-३२
आचार्य शंकर की बौद्ध दृष्टि	अनामिका सिंह	समाज एवं संस्कृति	५४	१०-१२	२००३	३३-५३
वर्तमान सामाजिक सन्दर्भ में अष्ट्यात्मवाद की चुनौतियाँ एवं जैन दृष्टि से उसका समाधान	डॉ. श्याम किशोर सिंह	समाज एवं संस्कृति	५४	१०-१२	२००३	५४-६०
जाति व्यवस्था एवं उसका दायित्व गौधी और शाकाहार	डॉ. कमलेश कुमार जैन डॉ. शैलबाला शर्मा	समाज एवं संस्कृति धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५४	१०-१२	२००३	६७-७०
जैनों की नास्तिकता-धर्मनिरपेक्ष समाज का आधार	डॉ. काकतकर वासुदेव राव	समाज एवं संस्कृति	५४	१०-१२	२००३	७१-७७
खरतरगच्छ-भावहर्षीशाखा का इतिहास	डॉ. शिवप्रसाद	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५४	१०-१२	२००३	७८-९२
जैनों एवं सिक्खों के ऐतिहासिक सम्बन्ध	श्री महेन्द्र कुमार मस्त	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५४	१०-१२	२००३	९३-९९
			५४	१०-१२	२००३	१००-१०२

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
Landmark of Bāhubali Images in Karnataka	Prof. M.N.P. Tiwari	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५४	१०-१२	२००३	१०३-११०
Origin of Śramaṇism causes and conflict	Dr. Niharika	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५४	१०-१२	२००३	१११-११८
Jaina Contribution to Indian Grammar	Dr. A. K. Singh	आगम एवं साहित्य	५४	१०-१२	२००३	११९-१३८
लाढ़ प्रदेश में महावीर	डॉ. रमाकान्त जैन	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५५	१-६	२००४	१-३
त्रस एवं स्थावर का विभाग	समणी मंगल प्रज्ञा	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५५	१-६	२००४	४-९
जैन दर्शन में रत्नत्रय	प्रो. अमरनाथ पाण्डेय	दर्शन-तत्त्व मीमांसा व ज्ञान मीमांसा	५५	१-६	२००४	१०-१४
जैन दर्शन में निहित वैज्ञानिक तत्त्व	डॉ. अनुपम जैन	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५५	१-६	२००४	१५-३२
जैन धर्म में प्रतिपादित षडावश्यक की समीक्षा और इसकी प्रासंगिकता	श्री अनिल कुमार सोनकर	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५५	१-६	२००४	३३-४५
पार्श्वार्थ्युदय काव्य में अभिव्यंजित मेघदूत काव्य सामान्य केवली और अर्हन्तपद : एक समीक्षा	डॉ. मधु अग्रवाल	आगम एवं साहित्य	५५	१-६	२००४	४६-५१
जीवन्धरचम्पू में पर्यावरण की अवधारणा	साध्वी विजयश्री	समाज एवं संस्कृति	५५	१-६	२००४	५२-५६
	डॉ. कमलेश कुमार जैन	समाज एवं संस्कृति	५५	१-६	२००४	५७-६३

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
जैन दर्शन में अेकान्तवाद	डॉ. शारदा सिंह	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५५	१-६	२००४	६४-६८
श्रमण आचार व्यवस्था-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	कु. नीतू द्विवेदी	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५५	१-६	२००४	६९-७६
साधारण सिद्धसेनसूरि रचित 'विलासवईकहा'	श्री वेद प्रकाश गर्ग	आगम एवं साहित्य	५५	१-६	२००४	७७-७९
जैन दर्शन का कर्म सिद्धान्त एवं उनके समान्तर भारतीय दर्शन में प्रचलित अन्य सिद्धान्त	डॉ. श्रीप्रकाश पाण्डेय	दर्शन-तत्त्वमीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५५	१-६	२००४	८०-९०
जैन गुफाएँ : ऐतिहासिक व धार्मिक महत्त्व	डॉ. एन. के. शर्मा	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५५	१-६	२००४	९१-९८
जैन दर्शन एवं योगवाशिष्ठ में मृत्यु विचार	श्री मनोज कुमार तिवारी	दर्शन-तत्त्वमीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५५	१-६	२००४	९९-११०
महावीर एवं बुद्ध का वर्षावास तीर्थंकर पार्श्वनाथ की प्रतिमाएं (होशंगाबाद संग्रहालय के सन्दर्भ में)	डॉ. मनीषा सिन्हा डॉ. गुलनाज तंवर	समाज एवं संस्कृति इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५५	१-६	२००४	१११-११५
महाराणा प्रताप का पत्र अकबर प्रतिबोधक जैनाचार्य हीरविजय सूरि के नाम	डॉ. सोहनलाल पटना	विविध	५५	१-६	२००४	११६-११७
खरतरगच्छ-क्षेमकीर्ति शाखा का इतिहास	डॉ. शिवप्रसाद	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५५	१-६	२००४	१२०-१२८

लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
Dr. M.R. Mehta	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५५	१-६	२००४	१२९-१३४
D.S. Baya 'Sreyas'	समाज एवं संस्कृति	५५	१-६	२००४	१३५-१४७
Dr. B.N. Sinha	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५५	१-६	२००४	१४८-१७३
प्रो. सागरमल जैन	दर्शन-तत्त्व मीमांसा व ज्ञान मीमांसा	५५	७-९	२००४	१-१६
डॉ. धर्मचन्द्र जैन	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५५	७-९	२००४	१७-२५
श्री अनिल कुमार सोनकर	आगम एवं साहित्य	५५	७-९	२००४	२६-३६
डॉ. हुकुमचन्द्र जैन	आगम एवं साहित्य	५५	७-९	२००४	३७-४२
साध्वी प्रियदिव्यांजनाश्री	धर्म साधना नीति एवं आचार	५५	७-९	२००४	४३-४८
साध्वी डॉ. मंजुश्री	आगम और साहित्य	५५	७-९	२००४	४९-५६
श्री महेन्द्र कुमार 'मस्त'	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५५	७-९	२००४	५७
डॉ. विनोद कुमार शर्मा एवं आशा शर्मा	आगम एवं साहित्य	५५	७-९	२००४	५८-८१
Concept of self Evolution in Jainism					
Jaina Śramaṇa Tradition from Ādinātha to Pārśwanātha					
Social Aspect of Non-Violence					
जैन और बौद्ध प्रमाण मीमांसा : एक तुलनात्मक अध्ययन					
कर्म साहित्य में तीर्थंकर					
आवश्यकसूत्र का स्रोत एवं वैशिष्ट्य					
प्राकृत साहित्य का कथात्मक महत्व					
संवेगशाला में प्रतिपादित मरण के सत्रह प्रकार					
जैन आगमों में संगीत विज्ञान					
भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित गृहस्थों की आचार संहिता					
नेमिदूतम् का अलंकार लावण्य					

लेखक	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
खरतरावच्छ-सागरचन्द्रसूरिशाखा का इतिहास	डॉ. शिवप्रसाद	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५५	७-१	२००४	८२-९१
Jainism as Perceived by Huen-Tsang	Dr. A.P. Singh	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५५	७-१	२००४	९२-९८
निग्रन्थ संघ और श्रमण परम्परा	साध्वी विजयश्री 'आर्या'	इतिहास पुरातत्त्व एवं कला	५५	१०-१२	२००४	१-४
चंद्रवेद्यक प्रकीर्णक की विषय-वस्तु का मूल्यांकन	डॉ. हुकुमचंद जैन	आगम एवं साहित्य	५५	१०-१२	२००४	५-८
अर्द्धमागधी जैन आगम साहित्य में माला निर्माण-कला	डॉ. हरिशंकर पाण्डेय	आगम एवं साहित्य	५५	१०-१२	२००४	९-१२
आगमिक मान्यताओं में युगानुकूलन	डॉ. नन्दलाल जैन	आगम और साहित्य	५५	१०-१२	२००४	१३-२३
प्राचीनतम् एक दुर्लभ जैन पाण्डुलिपि	प्राचार्य कुन्दन लाल जैन	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५५	१०-१२	२००४	२४-२६
जैन कथा साहित्य का गौरव- 'वसुदेवहिण्डी'	डॉ. वेद प्रकाश गर्ग	आगम एवं साहित्य	५५	१०-१२	२००४	२७-२९
बिहार गाँव की मृण्मुहूर्ते	डॉ. अशोक प्रियदर्शी	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५५	१०-१२	२००४	३०-३४
कल्पप्रदीप में उल्लिखित वाराणसी के जैन एवं कतिपय अन्य तीर्थस्थल	डॉ. शिवप्रसाद	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५५	१०-१२	२००४	३५-३९
जैन और बौद्ध श्रमण संघ में विधि शास्त्र का विकास : डॉ. चन्द्ररेखा सिंह एक परिचय	डॉ. चन्द्ररेखा सिंह	समाज एवं संस्कृति	५५	१०-१२	२००४	४०-४७
फतेहपुर सीकरी से प्राप्त श्रुतदेवी (जैन सरस्वती) की प्रतिमा	डॉ. अशोक प्रियदर्शी	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५५	१०-१२	२००४	४८-५१

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
Status of woman in Jain Community	Dr. Reeta Agrawal	समाज और संस्कृति	५५	१०-१२	२००४	५२-५६
Concept of Sūkṣma Śārīra in Indian Philosophy	Dr. Saroj Sharma	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५५	१०-१२	२००४	५७-५९
Economic Aspect of Non-Violence	Dr. B.N. Sinha	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५५	१०-१२	२००४	६०-८८
जीवदया : धार्मिक और वैज्ञानिक आयाम	डॉ. काकतकर वासुदेव राव	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५६	१-६	२००५	१-१७
रूपस्थ और रूपातीत ध्यान	डॉ. हरिशंकर पाण्डेय	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५६	१-६	२००५	१८-२४
कर्म-सिद्धान्त एवं वस्तुस्वातन्त्र्य	डॉ. अल्पना जैन	दर्शन-तत्त्व मीमांसा और ज्ञान मीमांसा	५६	१-६	२००५	२५-३१
भारतीय दार्शनिक सन्दर्भ में जैन अचेतन द्रव्य	डॉ. विनोद कुमार तिवारी	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५६	१-६	२००५	४०-४४
प्राकृत भाषा और राजशेखर कृत 'कपूरमञ्जरी' में देशी शब्द	डॉ. कमलेश कुमार जैन	आगम और साहित्य	५६	१-६	२००५	४५-५६
आचार्य नेमिचन्द्रसूरि कृत 'रयणचूडरायचरियं' में वर्णित अवात्तर कथाएँ एवं उनका मूल्यांकन	डॉ. हुकुमचन्द जैन	आगम और साहित्य	५६	१-६	२००५	५७-७४
मुहम्मद तुगलक और जैन धर्म	डॉ. निर्मला गुप्ता	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५६	१-६	२००५	७५-८०

लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
राजभूत काल में जैन धर्म	इतिहास पुरातत्व एवं कला	५६	१-६	२००५	८१-८५
जौनपुर की बड़ी मस्जिद क्या जैन मंदिर है?	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५६	१-६	२००५	८६-८८
आनन्दजी कल्याणजी पेढी के संस्थापक युगपुरुष	समाज एवं संस्कृति	५६	१-६	२००५	८९-९३
श्रीमद् देवचन्द्र जी महाराज	इतिहास, पुरातत्व और कला	५६	१-६	२००५	९५-१२५
The Jaina Manuscript and Miniature Tradition		५६	१-६	२००५	१२६-१३३
Mathematical Formulary of Jinistic Precepts	आगम और साहित्य	५६	१-६	२००५	१३४-१५०
Scientific Thought Evident in the Labdhisāra	समाज एवं संस्कृति	५६	३-४	२००५	१-१७
भारतीय संस्कृति के दो प्रमुख घटकों का सहसम्बन्ध (वैदिक एवं श्रमण)	इतिहास पुरातत्व एवं कला	५६	३-४	२००५	१८-२४
महावीर का श्रावक वर्ग तब और अब :					
एक आत्मविश्लेषण	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५६	३-४	२००५	२५-३६
भगवान् महावीर का जन्म-स्थल : एक पुनर्विचार	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५६	३-४	२००५	३७-४०
भगवान् महावीर का केवल ज्ञान स्थल: एक पुनर्विचार	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५६	३-४	२००५	४१-४७
भगवान् महावीर की निर्वाणभूमि पावा : एक पुनर्विचार	दर्शन-तत्त्वमीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा	५६	३-४	२००५	४८-५७
जैन तत्त्वमीमांसा की विकासयात्रा :	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५६	३-४	२००५	५८-६१
ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में					
जैन दर्शन में मोक्ष की अवधारणा					

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
जिन प्रतिमा का प्राचीन स्वरूप : एक समीक्षात्मक चिन्तन	डॉ. सागरमल जैन	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५६	३-४	२००५	६२-६८
"अंगविज्ञा" में जैन मंत्रों का प्राचीनतम स्वरूप	डॉ. सागरमल जैन	आगम और साहित्य	५६	३-४	२००५	६९-७५
उमास्वाति एवं उनकी उच्चैर्नारंग शाखा का उत्पत्ति-स्थल एवं विचरण क्षेत्र	डॉ. सागरमल जैन	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५६	३-४	२००५	७६-८१
उमास्वाति का काल	डॉ. सागरमल जैन	आगम और साहित्य	५६	३-४	२००५	८२-८६
उमास्वाति और उनकी परम्परा	डॉ. सागरमल जैन	आगम और साहित्य	५६	३-४	२००५	८७-९२
जैन आगम साहित्य में श्रावस्ती	डॉ. सागरमल जैन	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५६	३-४	२००५	९३-९६
प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में कृष्ण	डॉ. सागरमल जैन	आगम और साहित्य	५६	३-४	२००५	९७-११०
मूलाचार : एक अध्ययन	डॉ. सागरमल जैन	आगम और साहित्य	५६	३-४	२००५	१११-१२३
प्राचीन जैनागमों में चार्वाक दर्शन का प्रस्तुतीकरण एवं समीक्षा	डॉ. सागरमल जैन	आगम एवं साहित्य	५६	३-४	२००५	१२४-१३१
ऋषिभाषित में प्रस्तुत चार्वाक दर्शन	डॉ. सागरमल जैन	आगम एवं साहित्य	५६	३-४	२००५	१३२-१३६
राजप्रशनीयसूत्र में चार्वाक मत का प्रस्तुतीकरण एवं समीक्षा	डॉ. सागरमल जैन	आगम एवं साहित्य	५६	३-४	२००५	१३७-१४१
भागवत के रचना काल के सन्दर्भ में जैन साहित्य के कुछ प्रमाण	डॉ. सागरमल जैन	आगम एवं साहित्य	५६	३-४	२००५	१४२-१४५
बौद्ध धर्म में सामाजिक चेतना	डॉ. सागरमल जैन	समाज एवं संस्कृति	५६	३-४	२००५	१४६-१५५
धर्म निरपेक्षता और बौद्ध धर्म	डॉ. सागरमल जैन	धर्म, साधना नीति एवं आचार	५६	३-४	२००५	१५६-१६३

लेखक	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
महायान सम्प्रदाय की समन्वयात्मक जीवन दृष्टि Human Solidarity and Jainism : The challenge of our times	डॉ. सागरमल जैन Dr. Sagarmal Jain	समाज एवं संस्कृति समाज और संस्कृति	५६	३-४	२००५	१६४-१७४
The impact of Nyāya and Vaiśeṣika school of Jaina	Dr. Sagarmal Jain	दर्शन, तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५६	३-४	२००५	१८६-१९२
प्रकृत कथा-साहित्य में सांस्कृतिक चेतना	श्रीरंजन सूरिदेव	आगम एवं साहित्य	५७	१	२००६	१-१०
कर्पूरमञ्जरी में भारतीय समाज	डॉ. हरिशंकर पाण्डेय	समाज एवं संस्कृति	५७	१	२००६	११-१८
तत्त्वार्थसूत्र का पूरक ग्रन्थ : जैन सिद्धान्त-दीपिका	डॉ. धर्मचन्द्र जैन	आगम और साहित्य	५७	१	२००६	१९-३२
भारतीय व्याकरण शास्त्र की परम्परा	डॉ. अतुल कुमार प्रसाद सिंह	आगम और साहित्य	५७	१	२००६	३३-४४
पद्मपुराण में राम का कथानक और उसका सांस्कृतिक पक्ष	डॉ. श्वेता जैन	आगम और साहित्य	५७	१	२००६	४५-५३
धम्म चक्र प्रवर्तन सूत्र : मानवीय दुःख विमुक्ति का निदान पत्र	प्रो. अँगने लाल	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५७	१	२००६	५४-५९
प्रतीत्यसमुत्पाद और निमित्तोपादानवाद	कु. अल्पना जैन	दर्शन, तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५७	१	२००६	६०-६५
महावीर कालीन मत-मतान्तर : पुनर्निरीक्षण	डॉ. विभा उपाध्याय	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५७	१	२००६	६६-८४
जैन धर्म के जीवन मूल्यों की प्रासंगिकता	दुलीचन्द जैन	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५७	१	२००६	८५-९६
वैदिक ऋषियों का जैन परम्परा में आत्मसातीकरण	डॉ. अरुण प्रताप सिंह	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५७	१	२००६	९७-१०५

लेखक	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
'दया-मृत्यु' एवं 'संधारा-प्रथा' का वैज्ञानिक आधार	डॉ. रामकुमार गुप्त	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५७	१	२००६	१०६-१११
जैन श्रमण संघ में विधि शास्त्र का विकास	डॉ. शारदा सिंह	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५७	१	२००६	११२-१२०
देवानन्दा-अभिनन्दन	कुमार प्रियदर्शी	विविध	५७	१	२००६	१२१-१२३
The conception of Death in Buddhism and Jainism	Dr. Pramod Kumar Singh	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५७	१	२००६	१२६-१३८
Jaina Śāsanadevatās : Source and Iconography	Dr. Nandini Verma	समाज एवं संस्कृति	५७	१	२००६	१३९-१४१
श्वेताम्बर आगम और दिगम्बरत्व	जस्टिस. एम.एल. जैन	आगम और साहित्य	५७	२	२००६	१-१४
प्राचीन भारत में आर्थिक विचार : जैन आगमों के परिप्रेक्ष्य में	कु. रंजना श्रीवास्तव	आगम और साहित्य	५७	२	२००६	१५-१९
जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में सांख्य का विकासवाद	डॉ. सत्यदेव मिश्र	दर्शन-तत्त्व मीमांसा और ज्ञान मीमांसा	५७	२	२००६	२०-२६
बौद्ध भिक्षु संघ का विकास और नियम	डॉ. कमलेश डूबे	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५७	२	२००६	२७-३४
वैदिक और श्रमण परम्परा में अहिंसा	डॉ. रीता अग्रवाल,	धर्म, साधना नीति एवं आचार	५७	२	२००६	३५-४५
भारत की अहिंसक संस्कृति	डॉ. अनीता अग्रवाल	समाज एवं संस्कृति	५७	२	२००६	४६-५१
The Role of Ahimsā in health care Ethics	Prof. Cromwell Crawford	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५७	२	२००६	५३-७०

लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
Medical Ethics in Ancient India	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५७	२	२००६	७१-८२
The Jaina concept of Ahimsā and the modern world	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५७	२	२००६	८३-८९
Political Aspect of Non-Violence	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५७	२	२००६	९०-११५
प्राकृत महाकाव्यों में ध्वनि-तत्त्व	आगम और साहित्य	५७	३-४	२००६	१-१०
आचार्य हरिमद्रचूरि प्रणीत उपदेश-पद : एक अध्ययन	आगम एवं साहित्य	५७	३-४	२००६	११-२५
जैन हिन्दू ही हैं लेकिन किस अर्थ में?	विनायक दामोदर सावरकर विविध	५७	३-४	२००६	२६-३८
जैन साहित्य में शिक्षा का स्वरूप	आगम एवं साहित्य	५७	३-४	२००६	३९-४३
जैन दर्शन का कारणता सिद्धान्त	दर्शन-तत्त्व मीमांसा और ज्ञान मीमांसा	५७	३-४	२००६	४४-५१
जैन दर्शन में ईश्वर विचार	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५७	३-४	२००६	५२-५७
अनेकान्तवाद एवं उसकी प्रासंगिकता	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५७	३-४	२००६	५८-६५
अनेकान्तवाद-एक दृष्टि	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५७	३-४	२००६	६६-७४
जैन चिन्तन में मन की अवधारणा	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५७	३-४	२००६	७५-७९
जैन दर्शन व शैव दर्शन में प्रतिपादित मोक्ष	जैन दर्शन-तत्त्व मीमांसा व				

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
वर्ण व्यवस्था-जैन धर्म तथा हिन्दू धर्म के सन्दर्भ में	डॉ. दीपजय श्रीवास्तव	ज्ञान मीमांसा	५७	३-४	२००६	८०-८९
हिन्दू परम्परा में कर्म सिद्धान्त की अवधारणा	डॉ. रजनीश शुक्ल	समाज एवं संस्कृति	५७	३-४	२००६	९०-९५
भारतीय विद्या में शब्दविषयक अवधारणा का विकास	डॉ. जयन्त उपाध्याय	समाज एवं संस्कृति	५७	३-४	२००६	९६-१०४
दुःख का कारण कमी नहीं कामना	कन्हैया लाल लोढा	इतिहास, कला और पुरातत्व	५७	३-४	२००६	१०५-११३
जैन आगमों में शिल्प : एक दार्शनिक दृष्टि	डॉ. राघवेंद्र पाण्डेय	समाज एवं संस्कृति	५७	३-४	२००६	११४-१२४
तीर्थकारों की मूर्तियों पर उकेरित चिन्ह	डॉ. उमाकान्त पी. शाह	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५७	३-४	२००६	१२५-१३१
फतेहपुर सीकरी से प्राप्त श्रुतदेवी (जैन सरस्वती) की प्रतिमा	डॉ. अशोक प्रियदर्शी	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५७	३-४	२००६	१३२-१३९
कला की अनुपम कृति जबलपुर का श्री शीतलनाथ मंदिर	कुष्ण मुरारी पाण्डेय	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५७	३-४	२००६	१४०-१४४
स्मृति प्रमाण (प्रमाणमीमांसा के सन्दर्भ में) एक समीक्षामक अध्ययन	भूपेन्द्र शुक्ल	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५७	३-४	२००६	१४८-१५६
Dravya, Guna and Paryāya in Jaina Thought	Jayendra Soni	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५७	३-४	२००६	१५७-१७३
Environmental Aspect of Non-violence	Dr. B.N. Sinha	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५७	३-४	२००६	१७४-१८४
Philosophy Interpretations of Religion	Prof. S.P. Dubey	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५७	३-४	२००६	१८५-१९६
Buddhists Ethics and its contemporary relevance	Dr. R.K. Gupta	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५७	३-४	२००६	१९७-२०२

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
Anekāntavāda : A way Towards world Peace	Dr. Baleshwar Prasad Yadava	दर्शन-तत्त्व मीमांसा व ज्ञान मीमांसा	५७	३-४	२००६	२०३-२०६
The Jaina Tāntric Yantras	Dr. Lalit Kumar	विविध आगम और साहित्य	५७	३-४	२००६	२०७-२०९
तीस वर्ष और तीन वर्ष आगमों में अनगर के प्रकार : परिव्राजक, तापस और आजीवक के विशेष सन्दर्भ में	स्व. नन्दलाल जैन डॉ. विजय कुमार		५८	१	२००७	१-३१
वैदिक और श्रमण समाज में सामाजिक पारस्परिकता	डॉ. सुधा जैन	संस्कृति और समाज	५८	१	२००७	४०-४५
जैन-जैनेतर धर्म-दर्शनों में अहिंसा	डॉ. श्याम किशोर सिंह	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५८	१	२००७	४६-५४
जैन और बौद्ध धर्मों में चतुर्विध संघों का परस्पर योगदान	डॉ. शारदा सिंह	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५८	१	२००७	५५-६१
जैन ज्ञानमीमांसा : 'प्रमाणनयतत्त्वलोक' के विशेष सन्दर्भ में	डॉ. राघवेन्द्र पाण्डेय	दर्शन-तत्त्वमीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५८	१	२००७	६२-७५
भारतीय तर्कशास्त्र को जैन दर्शन का योगदान	डॉ. रakesh कुमार सिंह	दर्शन-तत्त्वमीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५८	१	२००७	७६-८३
जैन व शैव धर्मों के बीच समीपता के साहित्यिक एवं अभिलेखीय प्रमाण	डॉ. कृष्ण कान्त मिश्रा	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५८	१	२००७	८४-८६
जैन साहित्य में वर्णित व्यापारिक साधन	डॉ. संजय कुमार जैन	आगम और साहित्य	५८	१	२००७	८७-९०
Tattvārthavivaraṇa : An appraisal	Dr. G.L. Suthar	आ. १ और साहित्य	५८	१	२००७	९१-९०१
The concept of Dharma : A Reappraisal	Dr. Bijayananda Kar	धर्म, साधना, नीति और आचार	५८	१	२००७	१०२-११३

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
Can there be a choice between Religion or no Religion	Dr. Kanchan Saxena	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५८	१	२००७	११४-१२०
The Influence of Jainism on Akbar, The Mughal Emperor	Dr. Nirmala Gupta	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५८	१	२००७	१२१-१३०
The concept of Mind in won-Buddhist Philosophy and Yoga	Prof. Soon-Keum Kim	दर्शन-तत्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५८	१	२००७	१३१-१४२
Anekānta and concept of Absolutism in Jainism	Dr. Jagdish P. Jain	दर्शन-तत्व मीमांसा और ज्ञान मीमांसा	५८	१	२००७	१४३-१४९
जैन परम्परा में मंत्र-तन्त्र	डॉ. ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार'	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५८	२-३	२००७	१-१२
तपः साधना और समाधान	डॉ. रज्जन कुमार	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५८	२-३	२००७	१३-२२
निर्यावलिया-कल्पिका : एक समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. सुधा जैन	आगम और साहित्य	५८	२-३	२००७	२३-३३
धार्मिक सहिष्णुता और धर्मों के बीच मैत्री भाव-जैन दृष्टिकोण	डॉ. राजेन्द्र जैन	धर्म, साधना, नीति और आचार	५८	२-३	२००७	३४-४२
वैदिक, श्रमण परम्परा और उसकी लोक-यात्रा	डॉ. विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र 'विनय'	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५८	२-३	२००७	४३-५३
आत्तोपदेशः शब्दः की जयन्त भट्टीय व्याख्या	डॉ. जयन्त उपाध्याय	दर्शन-तत्व मीमांसा और ज्ञान मीमांसा	५८	२-३	२००७	५४-६२
कालिदास के नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत के तद्धित प्रत्यय कौशल्य चौहान	डॉ. संजय कुमार सिंह	आगम और साहित्य	५८	२-३	२००७	६३-७५

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
तन्त्र दर्शन में ज्ञान का स्वरूप	डॉ. जयशंकर सिंह	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५८	२-३	२००७	७६-८०
जैन दर्शन एवं योगवाशिष्ठ में ज्ञान की क्रमागत अवस्थाओं का विवेचन	डॉ. मनोज कुमार तिवारी	दर्शन-तत्त्व मीमांसा और ज्ञान मीमांसा	५८	२-३	२००७	८१-९४
वैदिक और श्रमण परम्पराओं की दार्शनिक पारस्परिकता	डॉ. विजय कुमार	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५८	२-३	२००७	९५-१००
बौद्ध एवं जैन दर्शन में व्यक्ति-विमर्श	डॉ. राघवेन्द्र पाण्डेय	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान	५८	२-३	२००७	१०१-११४
जैन दार्शनिक चिन्तन का ऐतिहासिक विकास-क्रम	डॉ. किरन श्रीवास्तव	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला मीमांसा	५८	२-३	२००७	११५-१२६
प्रकाशित उपांग साहित्य	श्री ओम प्रकाश सिंह	आगम और साहित्य	५८	२-३	२००७	१२७-१३५
Concept of Omniscience in Jainism	Dr. S.P. Pandey	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान	५८	२-३	२००७	१३७-१६२
Contribution of Śramaṇa Tradition to Indian culture	Dr. B.N. Sinha	समाज एवं संस्कृति मीमांसा	५८	२-३	२००७	१६३-१७१
Jahangir's relation with Spiritual Jaina Leaders	Dr. Nirmala Gupta	समाज एवं संस्कृति	५८	२-३	२००७	१७२-१८७
Jainism and Meat-Eating	M.V. Shah	धर्म, साधना, नीति और आचार	५८	२-३	२००७	१८८-२०६
Towards world Peace on the Wheels of 'Anekāntavāda' and 'Syādvāda'	Dr. Jaya Singh	दर्शन-तत्त्व मीमांसा और ज्ञान मीमांसा	५८	२-३	२००७	२०७-२१७
बौद्धों का शून्यवाद	डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव	दर्शन-तत्त्व मीमांसा और ज्ञान मीमांसा	५८	४	२००७	१-६

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
मध्यकालीन भारतीय प्रतिमा लक्षण	डॉ. मारुति नन्दन प्रसाद तिवारी	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५८	४	२००७	७-१५
आचारांग में भारतीय कला	डॉ. हरिशंकर पाण्डेय	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५८	४	२००७	१६-२२
जैन धर्म और ब्रज	डॉ. एस. पी. सिंह	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५८	४	२००७	२३-३१
मध्ययुगीन संत-काव्य में जैन-न्याय का निक्षेप-पद्धति	साध्वी डॉ. आर्चना	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५८	४	२००७	३२-३७
जैन दर्शन में प्रत्यभिज्ञान प्रमाण	डॉ. भूपेन्द्र शुक्ला	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५८	४	२००७	३८-४२
हठयोग एवं जैनयोग में प्रत्याहार का स्वरूप : एक तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. राज नारायण सिंह	तुलनात्मक	५८	४	२००७	१४३-४६
जैन पौधियों में जैनेतर दृश्य	डॉ. शैलेन्द्र कुमार	विविध	५८	४	२००७	१४७-५१
जैन दर्शन एवं श्री अरविन्द के दर्शन में चेतना का स्वरूप : एक तुलनात्मक सर्वेक्षण	डॉ. अबनीश चन्द पाण्डेय	दर्शन-तत्त्व मीमांसा और ज्ञान मीमांसा	५८	४	२००७	५२-५८
The contribution of Bhuddhism to the world of art and Architecture Venerable	Dr. Rewat Dhamma	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५८	४	२००७	६१-७२
Jaina Architecture and Images of western	Prof. Rasesh	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५८	४	२००७	७३-८३
India under the western Kṣatrapas	Jamindar					
The concept of Mind (Manas) in Jaina Philosophy	Dr. S. P. Pandey	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५८	४	२००७	८४-९७

लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
Jainism in Bengal	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५८	४	२००७	१८-१०३
Dr. Harihar Singh	आगम और साहित्य	५९	१	२००८	१-३२
डॉ. श्रीप्रकाश पाण्डेय	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५९	१	२००८	३३-४०
डॉ. सुधा जैन	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५९	१	२००८	४१-५०
डॉ. सोहनराज तातेड़	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५९	१	२००८	५१-५७
डॉ. दीपक रंजन	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५९	२	२००८	५९-६२
हिमांशु सिंघवी	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५९	२	२००८	६३-६४
कु. निकिता चोपड़ा	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५९	२	२००८	६५-६८
कु. प्रियंका चोरडिया	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५९	२	२००८	६९-७५
श्रीमती सरोज गोलेछा	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५९	२	२००८	७६-८०
श्रीमती कमलिनी बोकारिया	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५९	२	२००८	८१-८७
छैल सिंह राठौड़	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५९	२	२००८	८८-८९
रामस्वरूप जैन	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान	५९	१	२००८	११-११६
Dr. S.P. Pandey	मीमांसा	५९	१	२००८	११-११६
Dr. Vijay Kumar	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५९	१	२००८	११७-१२२
डॉ. सागरमल जैन	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५९	२	२००८	१-२४

लेख

Jainism in Bengal

प्रज्ञापना-सूत्र : एक समीक्षात्मक अध्ययन

महामंत्र नवकार की साधना और उसका प्रभाव

परीबह एवं उपसर्जय के सन्दर्भ में सल्लेखना व्रत

पुरुषार्थ-चतुष्टय : जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में

विज्ञान के क्षेत्र में अहिंसा की प्रासंगिकता

Concept of Sila in Jainism

Concept of Jiva in Jaina Metaphysics

भारतीय दार्शनिक ग्रन्थों में प्रतिपादित बौद्ध धर्म

एवं दर्शन

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
गुणस्थान सिद्धान्त पर एक महत्त्वपूर्ण शोध-कार्य	डॉ. सागरमल जैन	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	५९	२	२००८	२५-३१
जैन धर्म में ध्यान-विधि की विकास-यात्रा	डॉ. सागरमल जैन	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५९	२	२००८	३२-३६
ध्यानशतक : एक परिचय	डॉ. सागरमल जैन	साधना, धर्म, नीति एवं आचार	५९	२	२००८	३७-४९
आचारंगसूत्र की मनोवैज्ञानिक दृष्टि	डॉ. सागरमल जैन	विविध	५९	२	२००८	५०-६१
क्या तत्त्वार्थसूत्र स्त्रीमुक्ति का निषेध करता है।	डॉ. सागरमल जैन	विविध	५९	२	२००८	६२-६८
राजप्रश्नीयसूत्र का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. सागरमल जैन	आगम और साहित्य	५९	२	२००८	६९-८२
वृष्णिदशा : एक परिचय	डॉ. सागरमल जैन	आगम और साहित्य	५९	२	२००८	८३-८५
जैन इतिहास : अध्ययन विधि एवं मूल स्तोत्र	डॉ. सागरमल जैन	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५९	२	२००८	८६-९९
शंखेश्वर तीर्थ का इतिहास	डॉ. सागरमल जैन	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५९	२	२००८	१००-१०४
'नवदिगम्बर सम्प्रदाय' की कल्पना कितनी समीचीन?	डॉ. सागरमल जैन	विविध	५९	२	२००८	१०५-११२
जैन कथा-साहित्य : एक समीक्षात्मक सर्वेक्षण	डॉ. सागरमल जैन	आगम और साहित्य	५९	२	२००८	११३-१२३
जैन जीवन-दृष्टि	डॉ. सागरमल जैन	समाज एवं संस्कृति	५९	२	२००८	१२४-१३४
विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता : जैन साहित्य के सन्दर्भ में	डॉ. सागरमल जैन	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	५९	२	२००८	१३५-१४१
षट्जीविकाय की अवधारणा : एक वैज्ञानिक विश्लेषण	डॉ. सागरमल जैन	विविध	५९	२	२००८	१४२-१४९
Role of Religion in unity of Mankind and world peace	Dr. Sagarmal Jain	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	५९	२	२००८	१५१-१६७

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
Jaina Literature	Dr. Sagarmal Jain	आगम और साहित्य	५९	२	२००८	१६८-१७३
How appropriate is the proposition of Neo-Digambara School?	Dr. Sagarmal Jain	विविध	५९	२	२००८	१७४-१८३
Jaina Canonical Literature	Dr. Sagarmal Jain	आगम और साहित्य	५९	२	२००८	१८४-१९७
An investigation of the earlier subject matter of Praśnavyākaraṇa sūtra	Dr. Sagarmal Jain	आगम और साहित्य	५९	२	२००८	१९८-२१६
कीट-रक्षक सिद्धान्त का नैतिक आधार	प्रो. एस.आर. व्यास		५९	३	२००८	१-७
एक उदार दृष्टिकोण का पक्षधर है : जैन दर्शन का 'स्याद्वाद'	डॉ. सुरेन्द्र वर्मा		५९	३	२००८	८-१०
जैनागम में 'पाहुड' का महत्त्व	डॉ. ऋषभचन्द्र जैन		५९	३	२००८	११-१४
जैनशास्त्रों में विज्ञानवाद	डॉ. कमलेश कुमार जैन		५९	३	२००८	१५-२३
वर्तमान संदर्भ में अनेकान्तवाद की प्रासंगिकता	डॉ. श्याम किशोर सिंह		५९	३	२००८	२४-२८
पदार्थ बोध की अवधारणा	डॉ. जयन्त उपाध्याय		५९	३	२००८	२९-३६
अपभ्रंश जैन कवियों का रसराज-शांत रस'	डॉ. शंभु नाथ सिंह		५९	३	२००८	३७-४२
पाश्चात्य एवं जैन मनोविज्ञान में मनोविक्षिप्तता एवं उन्माद	डॉ. साधना सिंह		५९	३	२००८	४३-५२
जैन दर्शन में जीव का स्वरूप	नीरज कुमार सिंह		५९	३	२००८	५३-५९
उदारवादी जैन धर्म-दर्शन : एक विवेचन	डॉ. द्विजेन्द्र कुमार झा		५९	३	२००८	६०-७०

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
भारत की सांस्कृतिक यात्रा में श्रमण संस्कृति का अवदान	डॉ. विनोद कुमार तिवारी		५९	३	२००८	७१-७४
मिथिला और जैन धर्म	डॉ. अशोक कुमार सिन्हा		५९	३	२००८	७५-७८
जैन दर्शन में निक्षेपवाद : एक विश्लेषण	नवीन कुमार श्रीवास्तव		५९	३	२००८	७९-८३
The role of Jainism in Evolving a Global Ethics	Dr. Sohan Raj Tater		५९	३	२००८	८५-९०
Individual and Society in Jainism	Dr. C. Krause		५९	३	२००८	९१-११६
Contribution of Buddhism and Postmodernism to Society	Dr. Ram Kumar Gupta		५९	३	२००८	११७-१२२
पर्यावरण और वनस्पति	डॉ. सुधा जैन	समाज एवं संस्कृति	५९	४	२००८	१-८
देहात्मवाद	डॉ. विजय कुमार	दर्शन-तत्व मीमांसा व ज्ञान मीमांसा	५९	४	२००८	९-१८
धुतंगनिदेस में प्रयुक्त अर्थघटन के उपकरण	श्रीमती सरिता कुमारी	विविध	५९	४	२००८	१९-२८
भरत : एक शब्द यात्रा	डॉ. अविनाश कु. श्रीवास्तव	समाज एवं संस्कृति	५९	४	२००८	२९-३६
जैन चिन्तन में संपोष्य विकास की अवधारणा	डॉ. पंकज कुमार शुक्ल	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५९	४	२००८	३७-४६
जैन साहित्य में श्रमिकों की दशा	डॉ. नागेन्द्र नाथ मिश्र	आगम एवं साहित्य	५९	४	२००८	४७-५०

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
उत्तरी मध्य प्रदेश में जैन धर्म : १०वीं से १३वीं शताब्दी तक	यशवन्त सिंह	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५९	४	२००८	५१-५४
विश्व शांति और अहिंसा : एक विश्लेषण	डॉ. मुक्तेश्वर नारायण सिंह	धर्म, साधना, नीति और आचार	५९	४	२००८	५५-५९
भास का प्राकृत प्रयोगजन्य दर्शन	डॉ. रामाशंकर रजक	दर्शन-तत्वमीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा	५९	४	२००८	६१-७१
पूर्वमध्य कालीन जैन ग्रन्थों में शिक्षा के तत्त्व अष्टपाहुड एवं प्रवचनसार के परिप्रेक्ष्य में योग्य-अयोग्य साधु विवेचन	रविशंकर गुप्ता आनन्द कुमार जैन	समाज एवं संस्कृति आगम और साहित्य	५९	४	२००८	७२-७६ ७७-८५
Svetāmbara Scholars on Kundakunda : An appraisal	Dr. Jagdish Prasad Jain	समाज एवं संस्कृति	५९	४	२००८	८७-१०४
Revising Buddhism in Mughal India : Through the Seventeenth century Presian literature Dabistan-IMazahib	Dr. Damodar Singh	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	५९	४	२००८	१०५-११३
Theory of Karma and Rebirth in Theravāda	Dr. Abha Singh	दर्शन-तत्वमीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा	५९	४	२००८	११४-१२२
Jainism Art and Education an overture	Priti Kumari	ज्ञानमीमांसा	५९	४	२००८	१२३-१३१
Practice of Brahmvihāra in Theravāda Buddhism	Archphurich Normnian		५९	४	२००८	१३२-१४१

लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
Consciousness in Sartrean and Jain Philosophy	दर्शन-तत्त्वमीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा	५९	४	२००८	१४२-१५६
Women working class as reflected in Buddhist literature : An analytical view	समाज एवं संस्कृति	५९	४	२००८	१५७-१६३
Life story of R̥ṣabhadeva	समाज एवं संस्कृति	५९	४	२००८	१६४-१७८
पतञ्जलि का अष्टांग योग तथा जैन योग-साधना	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	६०	१	२००९	१-८
प्रेक्षाध्यान द्वारा भावनात्मक चेतना का विकास	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	६०	१	२००९	९-१२
जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप	आगम और साहित्य	६०	१	२००९	१३-१६
जैन धर्म का सामाजिक क्रान्ति के रूप में मूल्यांकन	समाज एवं संस्कृति	६०	१	२००९	१७-२०
सामाजिक नैतिकता के सन्दर्भ में कर्म सिद्धान्त का स्वरूप (गीता एवं जैन दर्शन की दृष्टि में)	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	६०	१	२००९	२१-२४
भगवतीसूत्र में वर्णित परमाणु विज्ञान	आगम और साहित्य	६०	१	२००९	२५-२७
उत्तराध्ययनसूत्र में वर्णित पंचमहाव्रत	आगम और साहित्य	६०	१	२००९	२८-३२
जैन चिन्तन में प्राणायाम : एक अनुशीलन	धर्म, साधना, नीति और आचार	६०	१	२००९	३३-३५
जैन धर्म में भक्ति का स्वरूप	धर्म, साधना, नीति और आचार	६०	१	२००९	३६-३८
पार्श्वचन्द्रगच्छ का संक्षिप्त इतिहास	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	६०	१	२००९	३९-४९
पूर्व मध्य कालीन जैन अभिलेखों में वर्णित समाज	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	६०	१	२००९	५०-५३
Kuṣāṇa Art in Mathurā	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	६०	१	२००९	५५-६४
Contribution of Jainism to Indian culture	समाज एवं संस्कृति	६०	१	२००९	६५-८२

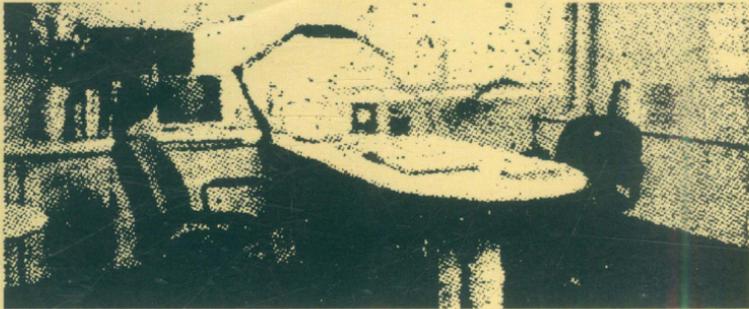
लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
Religious Exclusion : A threat to social Equality in Jaina Perspective	Dr. Vijay Kumar	समाज और संस्कृति	६०	१	२००९	८३-८८
Śrāvasti - The sacred Place of Śramaṇa Tradition	Km. Richa Singh	इतिहास, पुरातत्त्व एवं कला	६०	१	२००९	८९-९२
समाधिमरण और प्रायोपवेशन : श्रमण दृष्टि और वैदिक दृष्टि	डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	६०	२-३	२००९	१-८
भगवद्गीता और जैन साहित्य	डॉ. श्रीप्रकाश पाण्डेय	आगम एवं साहित्य	६०	२-३	२००९	९-१८
जैन दर्शन में कर्मवाद	डॉ. सोहन राज तातेड़	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	६०	२-३	२००९	१९-३०
‘आख्यानकमणिकोश’ का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. एच.सी. जैन	आगम और साहित्य	६०	२-३	२००९	३१-३६
महावीर की अहिंसा : ओशो की दृष्टि में	डॉ. इन्दुबाला जैन					
प्रागबौद्धकालीन श्रमण संस्कृति की समन्वयधर्मिता	डॉ. सरोज कुमार वर्मा	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	६०	२-३	२००९	३७-४४
जैन विचारणा के नित्यानित्यात्मवाद की नैतिक अपरिहार्यता	डॉ. अयोध्या नाथ त्रिपाठी	समाज और संस्कृति	६०	२-३	२००९	४५-५२
स्वास्थ्य संरक्षण में योग की उपादेयता जैन एवं वैदिक दृष्टि	डॉ. राहुल कुमार सिंह	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	६०	२-३	२००९	५३-५९
जैन दर्शन में पुरुषार्थ की अवधारणा	डॉ. अरुण कुमार सिन्हा	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	६०	२-३	२००९	६०-६४
	नमिता कपूर	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	६०	२-३	२००९	६५-६८

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
पुद्गल : एक पर्यवेक्षण	डॉ. नवीन कुमार	दर्शन, तत्व मीमांसा एवं ज्ञान	६०	२-३	२००९	६९-७६
अर्हत् शब्द की प्राचीनता व मौलिकता :	श्रीवास्तव	मीमांसा	६०	२-३	२००९	७७-७९
जैन धर्म के सम्बन्ध में	डॉ. विजयश्री 'आर्या'	समाज एवं संस्कृति	६०	२-३	२००९	८०-८९
The Vidyās of the Vidyādhara according to the Vasudevahimṇi-	Dr. Rani Majumdar	आगम और साहित्य	६०	२-३	२००९	९१-१०६
Current trends in the Practice of Voluntary peaceful Death (Samādhi Marāṇa) in the Jain tradition : An Empirical study	Dr. Col. D.S. Baya	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	६०	२-३	२००९	११-१२४
Tirtha, Tourism and Jainism	Dr. Rajjan Kumar	इतिहास, पुरातत्व एवं कला	६०	२-३	२००९	१०७-११५
Non-Violence in Jainism : Issues and Prospectives	Dr. Ramathtollah Saiedi	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	६०	२-३	२००९	११६-१२४
ध्वनिवर्धक का प्रश्न हल क्यों नहीं होता? क्या विद्युत अग्नि है? जैन धर्म में धार्मिक सहिष्णुता की स्थापना के मूल आधार	Dr. Nanjunda D.C. उपाध्याय अमर मुनि डॉ. राजेन्द्र जैन	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	६१	४-१	२००९-१०	१-१३
			६१	४-१	२००९-१०	१४-३०

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
जैन दर्शन में काल की अवधारणा	डॉ. सुदर्शन मिश्र	दर्शन-तत्त्व मीमांसा और ज्ञानमीमांसा	६१	४-१	२००९-१०	३१-३६
जैन दर्शन में आकाश	डॉ. रामजी राय	दर्शन-तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा	६१	४-१	२००९-१०	३७-४१
बौद्ध परम्परा में सौन्दर्य शास्त्र का दर्शन	डॉ. रामकुमार गुप्त	आगम एवं साहित्य	६१	४-१	२००९-१०	४२-४८
जैन आगमों में वर्णित शासन व्यवस्था	डॉ. अरुणिमा रानी	आगम और साहित्य	६१	४-१	२००९-१०	४९-५६
जैन साधना पद्धति : मनोऽनुशासनम्	डॉ. हेमलता बोलिया	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	६१	४-१	२००९-१०	५७-६५
श्रमण परम्परा में समाज व्यवस्था	डॉ. हरिशंकर पाण्डेय	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	६१	४-१	२००९-१०	६६-७३
पातञ्जल 'योगदर्शन' और हेमचन्द्राचार्य रचित 'योगशास्त्र' में प्राणायाम निरूपण	प्रो. डॉ. विष्णु कुमार पुरोहित	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	६१	४-१	२००९-१०	७४-८०
महावग में औषधि एवं शल्य चिकित्सा	डॉ. दिवाकर लाल श्रीवास्तव		६१	४-१	२००९-१०	८१-८७
जीवन (कविता)	डॉ. वशिष्ठ नारायण सिन्हा		६१	४-१	२००९-१०	८८
Development of Jain Yoga	Dr. Ashok Kumar Singh	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	६०	४-१	२००९-१०	८९-१०७
Sāmāyika	Padmanabh S. Jaini	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	६०	२-३	२००९-१०	१०८-११६
A study of Jaina Monastic Life	Dr. Sunil Kumar Jain	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	६०	२-३	२००९-१०	११७-१२४
आदर्श और स्वस्थ जीवन जीने की कला	डॉ. सोहनलाल तातेड़	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	६०	२-३	२०१०	१-१०
जैन साहित्य में वर्णित वास्तुकला : एक समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. हुकुमचन्द जैन एवं डॉ. इन्दुबाला जैन	जैन आगम एवं साहित्य	६०	२-३	२०१०	११-२१
जैनागमों में शिक्षा का स्वरूप	दुलीचन्द जैन	आगम एवं साहित्य	६०	२-३	२०१०	२२-३३

लेख	लेखक	विषय	वर्ष	अंक	ई.सन्	पृष्ठ
प्राकृत साहित्य में अंकित नारी जैन धर्म में शान्ति की अवधारणा	डॉ. अल्पना जैन प्रो. सागरमल जैन	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	६०	२-३	२०१०	३४-४४
सामाजिक क्रान्ति और जैन धर्म तीर्थकालीन श्रमणियों पर एक विचार दृष्टि	अनु. डॉ. राजेन्द्र कुमार जैन डॉ. आनन्द कुमार शर्मा साध्वी विजयश्री 'आर्या'	धर्म, साधना, नीति एवं आचार धर्म, साधना, नीति एवं आचार धर्म, साधना, नीति एवं आचार	६० ६० ६०	२-३ २-३ २-३	२०१० २०१० २०१०	४५-६५ ६६-७१ ७२-७४
Contribution of Acārya Mahāprajña to the World of Philosophy	- Samani Dr. Shashiprajna	दर्शन तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा	६०	२-३	२०१०	७५-८३
Karuṇā and the significance of its Social Implementation	Dulichand Jain	धर्म, साधना, नीति एवं आचार	६०	२-३	२०१०	८४-८९
Potentials of Tourism with Reference to Varanasi and its Jaina Places	Vivek Tiwari	इतिहास पुरातत्व एवं कला	६०	२-३	२०१०	९०-९७

# NO PLY, NO BOARD, NO WOOD



## **ONLY NUWUD<sup>®</sup>**

### INTERNATIONALLY ACCLAIMED

*Nuwud MDF is fast replacing ply, board and wood in offices, homes & industry, As ceilings*

### DESIGN FLEXIBILITY

*flooring furniture, mouldings, panelling, doors, windows... and almost infinite variety of*

### VALUE FOR MONEY

*woodwork. So, if you have woodwork in mind, just think NUWUD MDF*

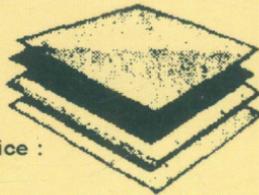


Registered Head Office :

20/6, Mathura Road,  
Faridabad-121006,  
HARYANA.

Tel: +91 129 230400-6,

Fax: +91 129 5061037.



IS 12808



*The one wood for  
all your woodwork*

#### Marketing Offices

**Ahmedabad** : 502, Anand Mangal, Complex-1, Behind Omkar House, Near Swastika Charrasta, C.G. Road, Ahmedabad-380009. Tel: 079-30958929, 31028976, Fax: 079-26466585. **Bangalore** : D 1/4, Hayes Court, 11/9 Hayes Road, Richmond Town, Bangalore. Tel: 080-30958040, 22279219, Fax: 080-22279219. **Delhi/UP** : E-46/12, Okhala Industrial Area, Phase II, New Delhi-110020. Tel: 011-26385737, 26383234, 26384656, Fax: 011-41611846. **Chennai** : Tyagraj Complex, No. 583, (New No. 250), 4A, 4<sup>th</sup> Floor, Poonamalee High Road, Kilpauk, Chennai-600010. Tel: 044-30970880, Fax: 044-25323731. **Hyderabad** : A-3, View Towers, 6-2-1, Lakadi Ka Pul, Hyderabad-560904. Tel: 040-30935561, 23307604, 23314794. **Kerala** : 33/1560-G, Chakkaraparampu Road, Vennala (P.O.), Engakulam, Kochi-682028. Tel: 0484-3969454, 3969452. **Jalandhar** : 29, G.T. Road, Kalra Building, Jalandhar-144001. Tel: 09316039144, 09347203593. **Jaipur** : 42, Dhuleshwar Garden, 1<sup>st</sup> floor, Near Ajmer Road, Jaipur-302001. Tel: 014 1-3028940, 270557, Fax: 0141-2214727. **Mumbai** : Shive Centre Office No. 214, 2<sup>nd</sup> Floor, Plot No. 72, Sec-17, Vashi Navi, Mumbai-400705. Tel: 022-39436667, 25002250, Fax: 022-25002250. **Pune** : 209, 2<sup>nd</sup> floor, Ashoka Mall, Opp. Hotel Sun N Sand, Bundgarden Road, Pune-411001. Tel: 020-39505076, 6121353, Fax: 020-26121353.